मास्टर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

Master of Arts (Sanskrit)

तृतीय सेमेस्टर - एम0ए0एस0एल - 601

काव्यशास्त्र

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफे0 ब्रजेश कुमार पाण्डेय,
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफे0 रमाकान्त पाण्डेय,
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान जयपुर परिसर, राजस्था
प्रोफे0 कौस्तुभानन्द पाण्डेय,
संस्कृत विभाग, अल्मोड़ा परिसर,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्रो0 एच0 पी0 शुक्ल-(संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असिस्टेन्ट प्रोफेसर-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	**खण्ड एवं इकाई संख्या**
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	प्रथम एवं द्वितीय खण्ड

प्रकाशकः (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी) -263139
पुस्तक का शीर्षक - काव्यशास्त्र

कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

ISBN No. 978-93-84632-25-0
मुद्रकः
प्रकाशन वर्ष : **2022**

नोटः- यह पुस्तक छात्र हित में शीघ्रता के कारण तदर्थ प्रकाशित की गयी है। संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन पाठ्यक्रम के पूर्ण लेखन व सम्पादन के पश्चात् किया जायेगा। इसका उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

खण्ड 1. काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ संख्या 1-4

इकाई-01 संस्कृत पद्य साहित्य का इतिहास-महाकाव्य का लक्षण, उत्पत्ति-विकास, रामायण, महाभारत का संक्षिप्त परिचय 5-21

इकाई-02 संस्कृत गद्य साहित्य की परम्परा 22-39

इकाई-03 संस्कृत नाटकों का उद्भव एवं विकास 40-48

खण्ड 2. काव्यशास्त्र की ऐतिहासिक परम्परा पृष्ठ संख्या 49

इकाई-01 भरत,भामह, दण्डी , रूद्रट का जीवन वृत्त , समय, कृतित्व 50-71

इकाई-02 उद्भट , वामन, कुन्तक , जीवनवृत्त , समय, कृतित्व 72-80

इकाई-03 मम्मट , विश्वनाथ , आनन्दवर्धन का जीवनवृत्त , समय, कृतित्व 81-97

इकाई-04 अभिनवगुप्त , राजशेखर , धनंजय ,भोजराज का जीवनवृत्त , समय, कृतित्व 98-109

इकाई-05 रामचन्द्र -गुणचन्द्र, शारदातनय, रूपागोस्वामी , पंडितराज जगन्नाथ 110-117

तृतीय सेमेस्टर/SEMESTER-III

खण्ड-1

काव्यशास्त्र का इतिहास

इकाई-01 संस्कृत पद्य साहित्य का इतिहास-महाकाव्य का लक्षण, उत्पत्ति-विकास, रामायण, महाभारत का संक्षिप्त परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 महाकाव्य का लक्षण

1.4 महाकाव्य की उत्पत्ति – विकास

1.5 रामायण का परिचय

1.6 महाभारत का संक्षिप्त परिचय

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.1 प्रस्तावना

भारत में महाकाव्य को सबसे पहले संस्कृत भाषा में देखा जाता है, इसका कारण यह है की संस्कृत ही सबसे प्राचीन भाषा रही है इस भाषा में वेदों के पश्चात् सर्वप्रथम लिखा गया काव्य आदि काव्य रामायण है। वस्तुत: कविता के बीज तो वेदों में भी मिलते हैं,किंतु उनके काव्य ग्रंथ में संकलित होने की स्थिति नहीं मिलती । उनके बाद रामायण महाभारत और श्रीमद्भागवत जैसे ग्रंथ कविता के विशालकाय ग्रंथ हैं । रामायण और महाभारत के बाद भारतीय कवियों को काव्य निर्माण की प्रेरणा इन्हीं दोनों विशालकाय काव्यग्रंथों से मिली है। जो पाश्चात्य पद्धति का एपिक है उससे रामायण और महाभारत की शैली तथा रचना विधान में पृथकता है। अतः हम भारतीय महाकाव्य के अध्ययन के लिए संस्कृत भाषा में लिखे गए वाल्मीकि रचित रामायण तथा व्यासरचित महाभारत के समीप सबसे पहले जाते हैं। इस अध्याय में आप मुख्य रूप से इस बात का अध्ययन करेंगे कि महाकाव्य का आरंभ, उदय, उद्भव कब हुआ तथा इनके विकास की भारतीय साहित्य में क्या स्थिति रही है।

रामायण को आदि काव्य कहा जाता है जिसका अंगी रस करुण रस है। महाभारत का अंगी रस शांत रस है, यही दोनों काव्य ग्रंथ इतने विशाल आकार प्रकार में भारतीय साहित्य में प्राप्त होते हैं। इनके बाद लिखे जाने वाले महाकाव्यों की संख्या व श्रृंखला लंबी है। इनकी रचना करते समय बाद के सभी कवियों ने अपने-अपने महाकाव्योंकी रचना के लिए इन्हीं से कथानक प्राप्त किए हैं, इन्हीं से नायक भीलिए हैं। वर्णन की कला भी इन्हीं से सीखी गई है। इस परंपरा में पाणिनि,वररुचि से लेकर महाकवि कालिदास और भवभूति,माघ तथा अन्य सभी महाकवि आते हैं जिन्होंने पूर्व के दो काव्य ग्रंथों यथा रामायण और महाभारत से विषय ग्रहण कर अपने अपने काव्य ग्रंथों की रचनाएं की।

इसी कारण परंपरा से ही रामायण और महाभारत को उपजीव्य काव्य कहा गया तथा बाद के सभी महाकाव्यों को उपजीवी कहागया।इस अध्याय में आप वेदों के पश्चात् कविता के उद्भव तथा उसके महाकाव्य तक पहुंचने तक की यात्रा का अध्ययन करेंगे। पूरी परंपरा को जानने के बाद आप आदि काव्य रामायण से लेकर परवर्ती अन्य महाकाव्यकारों पर प्रकाश डाल सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप—

- कविता की प्रारंभिक स्थिति को बता सकेंगे ।
- रामायण और महाभारत के रचयिता का उल्लेख करते हुए इनके आकार प्रकारको समझा पाएंगे ।
- रामायण तथा महाभारत के अंगी रसों पर अपने शब्दों में लिख सकेंगे ।
- पाणिनि तथा वररुचिकी काव्य रचना का उल्लेख कर सकेंगे ।
- कालिदास आदि सभी परवर्ती महाकाव्यकारों की विशेषताएं बता सकेंगे ।

1.3 महाकाव्य का लक्षण

महाकाव्य का उद्भव या उसकी उत्पत्ति जानने से पहले यहॉ महाकाव्य का लक्षण जान लेना अथवा उसके स्वरूप और उसकी परिभाषा को जान लेना सबसे आवश्यक है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में कहीं भी महाकाव्य का लक्षण उपलब्ध नहीं होता। लक्ष्य के आधार पर ही लक्षण की कल्पना की जाती है। वाल्मीकि रामायण तथा कालिदास के महाकाव्य का विश्लेषण करने वाले अथवा उनकी आलोचना करने वाले आलंकारिक आचार्यो ने ही अलंकार ग्रंथों में महाकाव्य के लक्षणों पर विचार किए हैं। जिनमें काव्यादर्शके रचयिता आचार्य दंडी तथा साहित्य दर्पण के रचयिता आचार्यविश्वनाथ आदि सबसे प्रामाणिक हैं। अग्निपुराण में भी लक्षण बताये गये हैं । साहित्य दर्पण नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ के रचयिता आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के लक्षण करते हुए कहा है–

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः॥
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ॥
शृंगारवीरशान्तनामेकोऽगी रस इष्यते॥
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधयः॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम् ॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ॥
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः॥
नाति स्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ॥
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन् दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ॥
सन्ध्यासूर्येन्दु रजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगया शैलर्तु वनसागराः।
संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः॥
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः॥
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ।
कवेवृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ॥

श्लोकों का अर्थ है – 'सर्गबन्ध कविता को महाकाव्य कहते हैं, इसका नायक कोई देवता अथवा कुलीन क्षत्रिय होता है, जो धीर और उदात्त गुणों से समन्वित होता है । श्रृंगार वीर और शांत में से कोई एक रस प्रधान हो। अन्य सभी रसों को अप्रधान माना जाय। महाकाव्य में नाटक की सभी

संधियॉभी समाहित होनी चाहिए। महाकाव्य काकथानकऐतिहासिक तथा लोक प्रसिद्ध होना चाहिए। जिसमें धर्म, अर्थ और काम तथा मोक्ष आदि पुरुषार्थों में से किसी एक का फल भीहोना चाहिए। महाकाव्य के लेखन का प्रारंभ ईश्वर गुरु आदि के नमस्कार अथवा आशीर्वाद से होना चाहिए। कहीं-कहीं दुष्टों की निंदा और सज्जनों की प्रशंसा का वर्णन अवश्य होना चाहिए। पूरे महाकाव्य में एक ही छंद होना चाहिए किंतु अंत में छंद परिवर्तन होना चाहिए। प्रत्येक सर्ग के अंत में आगे की कथा का संदेश दिया जाना चाहिए। महाकाव्य का संपूर्ण वर्णन संध्या, सूर्य, चंद्र, रात्रि, प्रदोष, अंधकार, दिन प्रातः ,मध्यान्ह, मृगया पर्वत , ऋतु, वन, सागर, संभोग और विप्रलम्भ श्रृंगार , मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, रण, यात्रा, विवाह, पुत्र आदि से संपन्न होना चाहिए।महाकाव्य का नामकरणकवि केजीवन अथवा नायक के चरित्र पर किया जाना चाहिए सर्ग के अंत में आने वाली कथा के आधार पर भी महाकाव्य का नामकरण करना चाहिए अथवा सर्गोंका नाम रखना चाहिए।

ऊपर कहे गए लक्षणों का पालन करने वाली कविताएं अथवा काव्य संकलन ही महाकाव्य कहे जाते हैं। इन लक्षणों को पढ़कर आप स्वयं जान गए होंगे कि वेदों में इस प्रकार की स्थिति नहीं थी। रामायण तथा महाभारत, ललित कविता के विशाल ग्रंथ हैं।किन्तु बाद में काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने अपने नियमों के आधार पर महाकाव्यत्व का अध्ययन किया और महाकाव्य नामक संज्ञा से विभूषित किया। पाश्चात्य साहित्य केहोमरसे हम इलियड तथा ओडिसीनामक महाकाव्य को जानते हैं। अब नीचे के वर्णनोंमें आप भारत में महाकाव्य की उत्पत्ति कथा इनके क्रमिक विकास का अध्ययन करेंगे जिसके अंतर्गत आपको सबसे पहले रामायण और महाभारत का संक्षिप्त परिचय जान लेना चाहिए। इसी से कालिदास आदि कवियों के महाकाव्यों को जानने में आसानी होगी।

1.4 महाकाव्य की उत्पति -विकास

काव्य जैसा उद्भव सबसे पहले ऋग्वेद के आख्यान सूक्तों ,इंद्र ,वरुण ,विष्णु, उषा आदि देवताओं की स्तुति मेंकिए गए मंत्रों तथा **नाराशंसी** गाथाओं से हुआ है।इनवेदिक आख्यानोंका विस्तृत रूप ब्राह्मण ग्रंथों में मिलता है। यही स्वरूप आगे चलकर महाकाव्य का रूप ले लेता है। जूनागढ़ के एक अभिलेख मेंरुद्रदामन की परिष्कृत रचना मिलती है हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति भी समुद्रगुप्त के काल का प्रमाण है। प्राचीन राजाओं के शिलालेखों का साहित्य उस समय के काव्य साहित्य की सत्ता का सबसे सबल प्रमाण है।

वैदिक संहिताओं में भी लालित्य के साथ अलंकार प्रयोग मिलते हैं ।जिनका प्रयोग धार्मिक उत्सवों में किया जाता रहा होगा ।वे गीत ,नृत्य ,आख्यान, उपाख्यान पारंपरिक रूप से चले आ रहे थे। आख्यान गीत ही ऋग्वेद के संवाद सूक्त हैं जैसे-यम यमी संवाद 10/11, पुरुरवा उर्वशी संवाद10/15, अगस्त लोपामुद्रा संवाद 1/179, इंद्र अदिति संवाद4/18, इंद्र इंद्राणी संवाद 10/86 शरमा पाणिसंवाद 10/51/3, इंद्र मरुत संवाद1/165/170, इन संवाद सूक्तों को भाष्यकारयास्क ने आख्यान ही कहा है।श्रीमद्भागवत महापुराण में वेणु गीत, भ्रमरगीत ,गोपी गीत

आदिकाव्यत्वकी ही सूचना देते हैं ।जिनके प्रसंगों के आधार पर कालांतर में अधिसंख्य महाकाव्य रचे गए।इस श्रृंखला में रामायण और महाभारत को काव्य की प्रौढपरंपराका संवाहक कहा जा सकता है। क्योंकि इन दोनों महाकाव्यों में भी जिन आख्यानोंऔर उपाख्यानों के रूप मिलते हैं वे सभी संस्कृत के महाकाव्योंके उद्भव रूप ही हैं। इसी परंपरा में बाद के अलंकारिक आचार्यों द्वारा रचे गए महाकाव्य के लक्षण के आधार पर हम रामायण और महाभारत को महाकाव्यत्वकी संज्ञा से विभूषित करते हैं। इन्हें उपजीव्य और इनके बाद वालों को उपजीवी कहा जाता है ।अतः इस क्रम में आपको सबसे पहले रामायण तथामहाभारत का संक्षिप्त परिचय जान लेना चाहिए जिससे महाकाव्यत्व जानने में तथा महाकाव्य का विकास जानने में आपको आसानी होगी।

रामायण और महाभारत के पश्चात् व्याकरण शास्त्र के प्रणेता पाणिनि रचित पातालविजय नामक महाकाव्य का नाम मिलता है, जिसका समय 450 ईसा पूर्व है। इसी क्रम में संस्कृत व्याकरण के वार्तिककार आचार्य वररुचि 350 ईसा पूर्व द्वारा रचित स्वर्गारोहण नामक महाकाव्य उपलब्ध होता है। पाणिनि की अष्टाध्यायीपर भाष्य लिखने वाले महाभाष्यकार पतंजलि द्वारा रचित महानंद नामक काव्य की रचना की गई। तत्कालीन शिलालेखों में अलंकृत काव्य शैली की रचनाओं से काव्य कला का विकास परिलक्षित होता है। महाकवि कालिदास ने अपनी रचनाएं कब की, इसका सटीक वर्णनकरना कठिन है, किंतु अनेक विद्वानों का यह मत हैकिकालिदास गुप्त कालीन थे। इनके द्वारा दो महाकाव्य रचे गये - रघुवंश महाकाव्य,कुमारसंभव महाकाव्य तथा एक मेघदूत नामक खण्डकाव्य। साहित्य के बहुत सारे सम आलोचकों मेरा मानना है कि संस्कृत महाकाव्य का पूर्ण उदय विक्रम संवत के प्रतिष्ठा पक विक्रमादित्य के समय से ही है।

लौकिक संस्कृत भाषा में कविता लिखने का उदय तो बाल्मीकि से ही हुआ है। किंतु कालिदास की गणना संस्कृत महाकाव्य के विकास में उत्कर्ष के रूप में की जाती है।महाकवि कालिदास के बाद विकास क्रम में अश्वघोष, मातृचेट, आर्यशूर, भारवि, भट्टि, कुमार दास, मंखक, जयदेव आदि कवियों के नाम आते हैं, जिन्होंने अधिकतर महाकाव्यों की रचनाएं की हैं। महाकाव्य की परंपरा के अपकर्ष कालमेंअभिनंद , अमरचंद सूरि, कश्मीरी कवि मातृगुप्त, रत्नाकर, क्षेमेंद्र, श्रीहर्ष, वस्तुपाल आदि से लेकरसभी जैन, बौद्धतथा अन्य प्राकृत भाषा के महाकाव्यों के नाम आते हैं। यद्यपि श्रीहर्ष कानैषधीयचरित विद्वानों की दवा कहा जाता है फिर भी आलंकारिक नियमों की दृष्टि से उतना लालित्य न होने के कारण आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इस काव्य को अपकर्ष काल काही काव्य माना है।

बोध प्रश्न 1

नीचे दिए गए सभी प्रश्नों में सही गलत का निर्धारण कीजिए तथा इकाई के अंत में दिए गए प्रश्नों के उत्तरों में अपने उत्तर से मिलान कीजिए

1. साहित्य दर्पण दंडी की रचना है गलत / सही

2. महाकाव्य को सर्गबन्ध होना चाहिए गलत/ सही

3. महाकाव्य में सर्गों की संख्या 8 से कम नहीं होनी चाहिए सही/ गलत

4. प्रयाग प्रशस्ति रुद्रदामन की है गलत/ सही

5. जूनागढ़ का अभिलेख हरिषेण का है सही/ गलत

6.काव्यादर्श विश्वनाथ की रचना है गलत/सही

1.5 रामायण का परिचय

पूरी परंपरा के द्वारा रामायण की रचना का समय 800 अथवा 600 ई0 पू0 निर्धारित किया गया है। रामायण की रचना के विषय में एक कथा प्रसिद्ध है—

महर्षि वाल्मीकि ने व्याध के द्वारा मारे गए क्रौञ्च मिथुन में से नर के मर जाने पर मादा के द्वारा करूणापूर्ण विलाप किये जाने की स्थिति को देखा। इस करुणापूर्ण स्थिति को सहन न कर पाने के कारण वाल्मीकि के हृदय से उनकी करुणा स्वयं श्लोक के रूप में निकल पड़ी-

मा निषादप्रतिष्ठां त्वमगम:शाश्वती समा:

यत् क्रौंच मिथुनादेकमवधी:काम मोहितम् ।

अर्थात् हे निषाद क्रौञ्च पक्षी के काममोहित जोड़े में से नर को मार कर तुम कभी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं करोगे। यह सुनकर ब्रह्मास्वयं अवतरित हुए और उन्होंने महर्षि को रामचरित की रचना करने की प्रेरणा दी। इसी प्रेरणा पर आधारित लौकिक संस्कृत भाषा में लिखी गई रामायण है। इसकी पुष्टि आनंदवर्धन ने अपने ग्रंथ ध्वन्यलोक में भी की है

काव्यस्यात्मा स एवावार्थ :तथाचादिकवे:पुरा

क्रौञ्च द्वन्द्ववियोगोत्थ:शोक: श्लोकत्व मागत: ।।

इस प्रकार वाल्मीकि आदि कवि हैं और रामायण आदि कविता है।वर्तमान में रामायण में 24000 श्लोक प्राप्त होते हैं। रामायण में सात कांड है-, बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधाकाण्ड, सुंदरकाण्ड, युद्धकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड ।विद्वानों का मानना है कि रामायण शैली बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड से पृथक है।अत:इनकाण्डों को मूल रामायण से अलग माना जाना चाहिए। वस्तुतः रामायण में प्रक्षेप बहुत है अतः इसके मूल रूप का निर्धारण करनाकठिन कार्य है। फिर भी उपलब्ध तथ्यों के आधार पर रामायण की काव्यता प्रतिष्ठित है। रामायण का अंगी रस करुण रस है। इसमें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के आदर्श राजा होने के साथ-साथ प्राणी मात्र की रक्षा ,यज्ञ रक्षा, और रावण विजय का वर्णन युद्ध के रूप में प्राप्त होता है। विशेष ध्यातव्य है रामायण में वाल्मीकि ने प्रकृति के भी कम मनोहर वर्णन नहीं किए हैं। लक्षणकारों द्वारा की गई महाकाव्य की परिभाषा में पूरे लक्षण रामायण में घटित होते हैं, अतः रामायण महाकाव्य है।

जीवन के स्थायी मूल्यवान् तत्वों, तथ्यों तथा सिद्धान्तों पर आधारित काव्य- कृतियॉ मानव-जीवन बालू की भीत के समान शीध्र ही ढहकर गिर जाने वाली वस्तु नहीं है । उसमें स्थायित्व है; पीछे आने वाली पीढियों को राह दिखाने की क्षमता है। और यह सम्भव होता है महनीय शोभन गुणों के कारण; जैसे उदात्तता, अर्थ और काम की धर्मानुकूलता, संकट के समय दीन का संरक्षण, विपत्ति के अघात से प्रताड़ित मानव को अपने बाहु-बल से बचाना,

शरणागत का रक्षण आदि। इन्हीं गुणों की प्रतिष्ठा जीवन में स्थायिता तथा महनीयता की जननी होती है। ऐसे काव्यों को हम शाश्वत काव्य का अभिधान दे सकते हैं। वाल्मीकि का काव्य इस शाश्वत काव्य का समुज्जल निदर्शन है, क्योंकि वह मानव-जीवन के स्थायी मूल्यवान् तत्वों को लेकर निर्मित किया गया है।

संस्कृत की आलोचना-परम्परा में रामायण 'सिद्धरस' प्रबन्ध कहा जाता है। कथा- वस्तु की विवेचना के अवसर पर आनन्दवर्धन का यह प्रख्यात श्लोक है (पृष्ठ148):-

सन्ति सिद्धरसप्रख्या ये च रामायणादय:।
कथाश्रया न तैर्योज्या स्वेच्छा रसविरोधिनी।

अभिनव गुप्त की व्याख्या से 'सिद्धरस' का अर्थ स्पष्ट झलकता है –सिद्ध: आस्वादमात्र - शेष:; नतु भावनीयो रसो यस्मिन्- अर्थात् जिस में रस की भावना नहीं करनी पड़ती, प्रत्युत रस आस्वाद के रूप में ही परिणत हो गया रहता है, वह काव्य 'सिद्धरस' कहलाता है, जैसे रामायण। श्रीरामचन्द्र का नाम सुनते ही प्रजावत्सल नरपति,आज्ञाकारी पुत्र, स्नेही भ्राता, विपद्ग्रस्त मित्रों के सहायक बन्धु का कमनीय चित्र हमारे मानस-पटल के ऊपर अंकित हो जाता है। जनकनन्दिनी जानकी का नाम ज्यों ही हमारे श्रवण को रससिक्त बनाता है, त्यों ही हमारे लोचनों के सामने अलोकसामान्य पातिव्रत की मंजुल मूर्ति झूलने लगती है। उनके कथन-मात्र से हमारा हृदय आनन्दविभोर हो उठता है। उनसे आनन्द की स्फूर्ति होने के लिए क्या राम के आदर्शचरित्र के अनुशीलन की आवश्यकता पड़ती है? हमारा हृदय राम-कथा से इतना स्निग्ध, रस-सिक्त तथा धुल-मिल गया है कि हमारे लिए राम और जानकी किसी अतीत युग की स्मृति न रहकर वर्तमान काल के जीवन्त प्राणी के रूप में परिणत हो गये हैं। इसीलिए रामायण को 'सिद्धरस' काव्य कहा गया है। वाल्मीकि विमल प्रतिभा से सम्पन्न, दैवी गुणों से मण्डित,आर्षचक्षु रखनेवाले एक महनीय 'कवि' थे। 'कवि' के वास्तविक स्वरूप की झलक आलोचकों को वाल्मीकि के दृष्टान्त से ही मिली। कवि की कल्पना में 'दर्शन' के साथ 'वर्णन' का भी मन्जुल सामरस्य रहता है। महर्षि को वस्तुओं का निर्मल दर्शन नित्यरूप से था, परन्तु जब तक 'वर्णन' का उदय नहीं हुआ तब तक उनकी कविता' का प्राकटय नहीं हुआ। समालोचकशिरोमणि भट्टतौत का यह कथन यथार्थ है :-

तथा हि दर्शने स्वच्छे नित्येऽप्यादिकवेर्मुने।
नोदिता कविता लोके यावज्जाता न वर्णना।।

संस्कृत की काव्य-धारा रसकूल का आश्रय लेकर प्रवाहित होगी – इसका परिचय उसी मिल गया जब प्रेमपरायण सह्चर के आकस्मिक वियोग से सन्तप्त क्रौन्ची के करूण निनाद को सुनकर वाल्मीकि के हृदय का शोक श्लोक के रूप में छलक पड़ा था- शोक: श्लोकत्वमागत:। काव्य का जीवन रस है; काव्य का आत्मा रस है- यह आदि- कवि की आलोचना-जगत को महती देन है। वाल्मीकि के काव्य की सबसे बड़ी विशिष्टता है- उदात्तता

।पात्रों के चित्रणमें, प्रसंगों के वर्णन में, प्रकृति के चित्रण में तथा सौन्दर्य की स्फूर्तिमें सर्वत्र उदात्तता स्वाभाविक रूप से विराजती है। आदिकवि के इस काव्य-मन्दिर की पीठस्थली है राम तथा जानकी का पावन चरित्र। राम शोभन गुणों के भव्य पुन्ज हैं। वाल्मीकि ने ही हमें रामराज्य की सच्ची कल्पना देकर संसार के सामने एक आदरणीय आदर्श प्रस्तुत किया राम कृतज्ञता की मूर्ति हैं- वे किसी प्रकार किये गए एक भी उपकार से सन्तुष्ट हो जाते हैं; परन्तु सैकड़ो अपकारों का भी वे स्मरण नहीं रखते (2।1।11):-

कथन्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मकतया।।

वे सदा दान देते हैं, कभी दूसरे से प्रतिग्रह नहीं लेते। वे अप्रिय कभी नहीं बोलते, सत्यपराक्रम राम अपने प्राण बचाने के लिए भी इन नियमों का उल्लंघन नहीं करते (3336):-

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयान्न ब्रूयात् किन्चिदप्रियम्।
अपि जीवितह्वतोर्वा राम: सत्यपराक्रम: ।।

राम पूर्ण मानव हैं। वे आदर्श पति हैं।सीता के प्रतिराम का सन्ताप चतुर्मुखी है। स्त्री(अबला) के नाश होने से वे कारूण्य से सन्तप्त हैं। आश्रिता के नाश से दया (आनृशंसय) के कारण, पत्नी (यज्ञ से सहधर्म-चारिणी) के नाश से शोक के कारण तथा प्रिया (प्रेमपात्री) के नाश से प्रेम (मदन) के कारण वे सन्तप्त हो रहे हैं(5।15।49) :-

स्त्री प्रणष्टेति कारूण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यत:।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेने च।।

राम के भातृ-प्रेम का परिचय हमें तब मिलता है, जब वे लक्ष्मण को शक्ति लगने पर अपने अनूठे हृद्गत भाव की अभिव्यक्ति करते है:-

देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवा:।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्रातासहोदर: ।।

प्रत्येक देश में स्त्रियॉं मिल सकती हैं तथा बन्धुजन भी प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु मैं तो ऐसा देश ही नहीं देखता जहाँ सहोदर भ्राता मिल सके। अनूठी उक्ति है राम की यह। शत्रु के भ्राता विभीषण को बिना विचार किये ही शरणगति प्रदान करना राम के चरित्र का मर्मस्थल है, परन्तु मेरी दृष्टि में उनकी उदात्तता का परिचय रावण-वध के प्रसंग में हमें मिलता है। राम का यह औदार्य आज तो कल्पना के भी बाहर है:-

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं न प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।

हे विभीषण, वैर का अन्त होता है शत्रु के मरण से। रावण की मृत्यु के साथ ही साथ हमारी शत्रुता भी समाप्त हो गई। उसका दाह-संस्कार आदि क्रिया करो। मेरा भी वह वैसा ही है जैसा तुम्हारा। 'मामाप्येष यथा तव'- रामचरित्र की उदात्तता का चरम उत्कर्ष है।

भगवती जनक-नन्दिनी के शील-सौन्दर्य की ज्योत्स्ना किस व्यक्ति के हृदय को शीतलता और शान्ति नहीं प्रदान करती ? जानकी का शील वाल्मीकि की प्रतिभा का विलास है, पातिव्रत धर्म का उत्कर्ष है आर्य-ललना की विशुद्धि का प्रतीक है। रावण को सीता की यह भर्त्सना कितनी उदात्तता है (5|37/62):-

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्॥

इस निन्दनीय निशाचर रावण से प्रेम करने की बात दूर रही, मैं तो इसे अपने पैर से – नहीं, बाएँ पैर से – भी नहीं छू सकती। अपनी पीठ पर बैठकर राम के पास पहुँचा देने के हनुमान के प्रस्ताव को ठुकराती हुई सीता कह रही हैं कि मैं स्वयं किसी भी परपुरूष के शरीर का स्पर्श नहीं कर सकती। रावण का तो स्पर्श अनाथ तथा असमर्थ होने से ही मुझे करना पड़ा था। सीता की यह चिर स्मरणीय उक्ति विशुद्धि के चरम की सूचिका है (5/37/62):-

भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम॥

परित्याग के समय भी सीता का धैर्य तथा उनका उदार चरित्र वाल्मीकि की लेखनी का चमत्कार है जिसे कालिदास और भवभूति ने अपने ग्रन्थों में अक्षरश: चित्रित किया है।

रामायण का कला पक्ष—

रामायण में हृदयपक्ष का प्राधान्य होने पर भी कलापक्ष की अवहेलना नहीं है। वाल्मीकि की भाषा उदात्त भावों की अभिव्यक्ति का समर्थ माध्यम है। छोटे-छोटे, प्राय: समासविहीन पदों में महर्षि ने बड़े ही सरस तथा सरल शब्दों के द्वारा अपने भावों की अभिव्यंजना की है। शाब्दी सुषमा की ओर महर्षि का ध्यान स्वत: आकृष्ट हुआ है तथा उन्होंने इसका प्रकटीकरण बड़ी सुन्दरता तथा भावुकता के साथ किया है। आनुप्रासिक शोभा के लिए एक पद्य का दृष्टान्त पर्याप्त होगा।

तस्य संदिदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च ।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव॥

अलंकार से विहीन, सुषमा से हीन सीता को देखकर हनुमान जी ने बड़े कष्ट से पहचाना कि यही सीता है, जिस प्रकार संस्कार से हीन तथा अर्थान्तर (भिन्न अर्थ) में प्रयुक्त वीणा को सुनकर श्रोता बड़ी कठिनता से उसके स्वरूप को पहचानता है (सुन्दर काण्ड 15/37):-

दु:खेन बुबुधे सीतां हनुमान् अनलंकृताम्।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम्॥

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा का प्रदर्शन भी बड़ा चमत्कारपूर्ण है। लंका-दाह के अनन्तर हनुमान अरिष्ट पर्वत के ऊपर जब चढ़ते हैं (सर्ग 56), तब वाल्मीकि ने उत्प्रेक्षाओं की झड़ी

लगा दी है- एक से एक नवीन चमत्कारी उत्प्रेक्षा जिसे कवि की वाणी ने स्पर्श कर उच्छिष्ट नहीं बना डाला है। पर्वत के श्रृड्गों से लटकने वाले मेघों के द्वारा प्रतीत होता है कि वह पहाड़ चादर ओढ़े हुए है:-

सोत्तरीयमिवाम्भोदै: श्रृड्गान्तर विलम्बिभि।

जल की बाढ़ की गम्भीर गड़गड़ाहट के कारण वह पर्वत अध्ययन-सा प्रतीत होता है तथा अनेक झरनों के शब्दों से वह गीत गाता –सा मालूम पड़ रहा है (सुन्दर काण्ड 56/28)

तोयौघनि:स्वनैर्मन्द्रै: प्राधीतमिव सवर्त: ।

प्रगीतमिव विस्पष्टं नानाप्रस्रवणस्वनै: ।।

अलंकारों का यह विन्यास पाठकों के हृदय में केवल कौतुक तथा चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं किया है, प्रत्युत् यह रसानुकूल है- मूल रस का पर्याप्त रूप से पोषक,संवर्धक तथा परिवृंदक है। रूपक की भी छटा कम सुहावनी नहीं है। तात्पर्य यह है कि रामायण में कला-पक्ष का विकास भी बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है। तथ्य यह है कि रसमग्न कवि जान-बूझकर किसी शाब्दी शोभा या आर्थी छटा से अपने काव्य को चमत्कृत बनाते हैं। इस तथ्य को हमारे आलंकारिकों ने खूब पहचाना है और इसीलिए आनन्दवर्धक रसपेशल अलंकार के लिए ‘अपृथक् यत्ननिर्वर्त्य’ होना नितान्त आवश्यक गुण मानते हैं । रसात्मक अलंकार के लिए कवि को कोई प्रयत्न अलग से नहीं करना पड़ता। रसाविष्ट दशा में वे स्वत: आविर्भूत हो जाते हैं, यह तथ्य हमारे आलोचकों ने वाल्मीकि की काव्य-कला के विश्लेषण से अवगत किया।

वाल्मीकि की प्रतिभा तथा योग्यता की एक महती दिशा अभी तक सामान्य आलोचकों की दृष्टि से ओझल रही है। वाल्मीकि हमारे आदिकवि ही नहीं है, प्रत्युत् आदि आलोचक भी हैं। काव्य का नैसर्गिक रूप क्या होता है, महाकाव्य के भीतर किन मौलिक उपादानों का ग्रहण होता है? आदि प्रश्नों का प्रथम उत्तर हमें ‘वाल्मीकि –रामायण’ में उपलब्ध होता है। संस्कृत साहित्य में ‘महाकाव्य’ की कल्पना रामायण के साहित्यिक विश्लेषण का निश्चित परिणाम है। रामायण के अन्तरंग तथा बहिरंग की समीक्षा करके संस्कृत साहित्य को वर्धिष्णु तथा समृद्ध बनाया। काव्य के अन्तरंग के अन्तरंग की समीक्षणके प्रसंग में महर्षि की सबसे बड़ी देन आलोचना-जगत् को है- शोक तथा श्लोक का समीकरण(शोक: श्लोकत्वमागत) । इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संस्कृत के मूर्धन्य आलोचक आनन्दवर्धन ने तथा महाकवि कालिदास ने समभावेन इंगित किया है। कालिदासकी स्पष्ट उक्ति है (रघुवंश) :-

विषादविद्गाण्डजदर्शनोत्य: श्लोकत्वमापद्यत् यस्य शोक:।

आनन्दवर्धन की रूचिर आलोचना है (ध्वन्यालोक 1/5):-

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवे: पुरा।

क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थ: शोक: श्लोकत्वमागत: ।।

इस समीकरण का तात्पर्य बड़ा गम्भीर है। रसाविष्ट हृदय होने पर ही कविता का उद्गम होता है। जब तक कवि के हृदय को तीव्र भावना आक्रान्त नहीं करती , तब तक वह विशुद्ध कविता का निर्माण नहीं कर सकता। काव्य अन्तश्चेतना की बाह्य अभिव्यक्ति है। जो हृदय स्वत: किसी भाव का अनुभव नहीं करता, वह किसी भी दशा में दूसरों के ऊपर उस भाव को प्रकटीकरण नहीं कर सकता। अतएव रसात्मक कविता के उन्मेष के लिए हृदय को रस दशा में पहुँचाना ही पड़ता है। तीव्र भाव के अन्त:जागरण के साथ ही साथ उसकी शाब्दी अभिव्यक्ति बाहर अवश्यमेव होती है। आलोचना के इस मर्म को वाल्मीकि का महत्वपूर्ण तथ्यसंकेत है। यह तक हुई काव्य की अन्त:स्फूर्ति की चर्चा। काव्य के बहिरंग रूप के विषय में वाल्मीकि में बहुत-सी उपादेय सामग्री अपने विश्लेषण की अपेक्षा रखती है। लव-कुश के द्वारा मधुर स्वरों में रामायण का गायन वाल्मीकि की इस मार्मिकआलोचना का भाजन है (बालकाण्ड 4/17) :-

अहो गीतस्य माधुर्य श्लोकानां च विशेषत:।
चिरनिवृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम्॥

प्राचीन काल में बहुत पूर्व निवृत्त होने वाली घटना को प्रत्यक्ष के समान दिखलाने वाला काव्य ही हमारी श्लाघा का पात्र होता है। यह पद्य केवल माधुर्य गुण तथा भाविक अलंकार के काव्य में आवश्यक प्रसाधन होने की ओर ही संकेत नहीं करता, प्रत्युत यह पद्य अभिनवगुप्त के साहित्य –शास्त्रीय गुरू भट्टतौत के उस महत्वपूर्ण सिद्धान्त का भी आधार है जिसके द्वारा रस की अनुभूति के लिए उसका 'प्रत्यक्षायमाण' होना एक आवश्यक साधन होता है। इसी प्रकार किष्किन्धा काण्ड में हनुमान जी के भाषण की प्रशंसा में रामचन्द्र ने जो उपादेय बातें कहीं हैं वे साहित्य की दृष्टि से मार्मिक है। (किष्किन्धा काण्ड 3 सर्ग 30-32 श्लोक) । इस प्रकार समीक्षा करने पर वाल्मीकि का आलोचक रूप भी हमारे सामने भली –भॉति प्रकट होता है।

तथ्य तो यह है कि वाल्मीकि की प्रतिभा ने रामायण में जिस अमृत रस का सन्निवेश किया है वह सदा कविजनों को आप्यायित करता रहेगा। हजारों वर्षो से भारतीय पाठकों का हृदय रामायण के पाठ से स्पन्दित होता आया है और आगे भी स्पन्दित होता रहेगा। मानव-मूल्यों के अंकन में , काव्य के सुचारू आदर्श के चित्रण में, जीवन को उदात्त बनाने की कला में, सत्यं तथा शिवं के साथ सुन्दरं के मधुमय सामान्जस्य में वाल्मीकि की वाणी विश्व के सामने एक भव्य आदर्श उपस्थित करके जनता के हृदय को सदा आप्यायित करती रहेगी-इस चिरन्तन सत्य का कथमपि अपलाप नहीं हो सकता।

रामायण का अंगी रस—

इस विषय में आनन्दवर्धन का स्पष्ट कथन है कि रामायण के आरम्भ में 'शोक: श्लोकत्वमागत:' इस कथन के द्वारा वाल्मीकि ने स्वयं ही करूण रस की सूचना दी है और सीता के आत्यन्तिक वियोग तक अपने प्रबन्ध का निर्माण कर उन्होंने करूण रस का पूर्ण

निर्वाह किया है। फलत रामायण का अंगीरस 'करूणा' ही है (ध्वन्यालोक, चतुर्थ उद्योत, पृष्ट 237) अन्य रस जैसे श्रृंगार और वीर अंग रस हैं। वाल्मीकि के अनुसरणकर्ता कवियों ने भी अपने काव्यों में करूण रस का परिपोष किया है।

वाल्मीकि समग्र कविसमाज के उपजीव्य है, विशेषत: कालिदास तथा भवभूति के। इन दोनों महाकवियों ने रामायण का गाढ अनुशीलन किया था और इनकी कविता में हमें जो रस मिलता है उसमें रामायण की भक्ति कम सहायक नहीं रही है। कालिदास का श्रृंगार रस सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, परन्तु उनका 'करूण' रस कम प्रभावशाली नहीं हैं कालिदास ने उभयविध 'करूण' को उपस्थित कर उसे सांगोपांग रूप से दिखलाया है। पत्नी की करूणा का रूप हम रघुवंश के 'अज-विलाप' में पाते है और पति के निमित्त पत्नी की करूण परिवेदना 'रति-विलाप' के रूप में हमें रूलाती है। ताप से लोहा भी पिघल उठता है, तब कोमल मानव-चित्त सन्ताप से मृदु बन जायगा- क्या इस विषय में संदेह के लिए स्थान है ? 'अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु? कालिदास के इन करूण वर्णनों में मानव-हृदय को प्रभावित करने की क्षमता है परन्तु भवभूति के उत्तर -रामचरित में तो यह अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया है। यह भवभूति का ही काम था कि उन्होंने सीता के वियोग में राम को रोते देखकर पत्थर को रूलाया है और वज्र के हृदय को भी विदीर्ण होते दिखाया है – अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदय। भवभूति ने करूण को 'एको रस:'– मुख्य रस, अर्थात् समस्त रसों की प्रकृति माना है और अन्य रसों को उनकी विकृति माना है। एको रस: करूण एव निमित्तभेदात्' - इस कथन के मूल को हमें वाल्मीकि के अन्दर खोजना चाहिये। वाल्मीकि का यह महाकाव्य पृथ्वीतलों को विदीर्ण कर उगनेवाले उस विराट् वटवृक्ष के समान है, जो अपनी शीतल छाया से भारत के समस्त मानवों को आश्रय देता हुआ प्रकृति की विशिष्ट विभूति के समान अपना मस्तक ऊपर उठाये हुए खडा है। महाकाव्य प्रधानतया वीर-रस प्रधान हुआ करते हैं, जिनमें युद्ध का घोष, विजय-दुन्दुभि का गर्जन तथा सैनिकों का माहात्म्य प्रदर्शित होता है परन्तु रामायण माहात्म्य वीर-रस के प्रदर्शन में नहीं हैं। किसी देवचरित के वर्णन में भी रामायण का गौरव नहीं है; क्योंकि महर्षि वाल्मीकि ने जब आदर्श गुणों से मण्डित किसी व्यक्ति का परिचय पूछा ,तब नारद ने एक मानव को ही उन अनुपम गुणों का भाजन बतलाया-'तैर्युक्त: श्रूतयां नर:' रामायण नर-चरित्र का ही कीर्तन है। भारतीय गार्हस्थ्य -जीवन का विस्तृत चित्रण रामायण का मुख्य उद्देश्य प्रतीत हो रहा है। आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श पति , आदर्श पत्नी -आदि जितने आदर्शो को इस अनुपम महाकाव्य में आदि कवि की शब्द-तूलिका ने खींचा है वे सब गृहधर्म के पट पर ही चित्रित किये गये हैं। इतना ही क्यों, राम-रावण का वह भयानक युद्ध भी इस काव्य का मुख्य उद्देश्य नहीं है। वह तो राम-जानकी-पति-पत्नी- की परस्पर विशुद्-प्रीति को पुष्ट करने का एक उपकरण-मात्र है और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। रामायण को भारतीय सभ्यता ने अपनी अभिव्यक्ति के लिये प्रधान साधन बना रखा है और भारतीय सभ्यता की

प्रतिष्ठा गृहस्थाश्रम है। अत: यदि इस गार्हस्थ्य धर्म की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिये आदिकवि ने इस महाकाव्य का प्रणयन किया तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ? रामायण तो भारतीय सभ्यता का प्रतीक ठहरा, दोनों में परस्पर उपकार्योपकारक-भाव बना हुआ है । एक को हम दूसरी की सहायता से समझ सकते हैं।

रामचरित्र—

आदिकवि ने अपने काव्य-मन्दिर की पीठ पर प्रतिष्ठित किया है-मर्यादा-पुरूषोत्तम महामानव महाराजा रामचन्द्र को। विभिन्न विकट परिस्थितियों के बीच में रहकर व्यक्ति अपने शील के सौन्दर्य की किस प्रकार रक्षा कर सकता है यह हमें वाल्मीकि ने ही सिखलाया है। यदि आदिकवि ने इस चरित्र का चित्रण न किया होता, तो हमे मंजुल गुणों के सामन्जस्य का परिचय कहॉ से मिलता ?इसके शब्दों में इतनी माधुरी है, चित्रों में इतनी चमक है कि मानव के कान और नेत्र इसके परिशीलन से एक साथ ही आप्यायित हो उठती हैं। रामायण को जितनी बार पढा जाय, उतनी ही बार उसमें नयी-नयी बाते सूझती हैं । इन सरल परिचित शब्दों में इतना रस-परिपाक हुआ है कि पढनेवालों का चित्त आनन्द से गद्गद् हो उठता है। सच बात तो यह है कि रामायण के इन अनुष्टुपों को पढ़कर शताब्दियों से भारत का हृदय स्पन्दित होता आ रहा है और भविष्य में भी होता रहेगा।

राम के किन आदर्श गुणों के अंकन में यह लेखनी प्रवृत्त हो ? उनकी कृतज्ञता का वर्णन किन शब्दों में किया जाय ? राम तो किसी तरह किये गये एक ही उपकार से सन्तुष्ट हो जाते है; और अपकार चाहे कोई सैकड़ों ही करे, उनमें से एक का भी स्मरण उन्हें नहीं रहता। अपकारों को भूलने वाला हो तो ऐसा हो। उनके क्रोध तथा प्रसाद दोनों ही अमोध है। अपने अपराधों के कारण हनन-योग्य व्यक्तिायों को बिना मारे वे नहीं रहते और अवध्य के ऊपर क्रोध के कारण कभी उनकी ऑख भी लाल नहीं होती (2/4/6)-

नास्य क्रोध: प्रसादो वा निरर्थोऽस्ति कदाचन।
हन्त्येष नियमाद् वध्यानवध्येषु न कुप्यति।।

राम का शील कितना मधुर है। वे सदा दान करते है, कभी दूसरे से प्रतिग्रह नहीं लेते। वे अप्रिय कभी नहीं बोलते। साधारण स्थितिकी बात नहीं, प्राणसंकट उपस्थित होने की विषय दशा में भी सत्य पराक्रम वाले राम इन नियमों का उल्लंघन नहीं करते। अपने कुटुम्बियों के प्रति उनका व्यवहार कितना कोमल तथा सहानुभूति पूर्ण है ! सीता के प्रति राम के प्रेम का वर्णन करते समय आदिकवि ने मनस-तत्व का बड़ा ही सूक्ष्म निरीक्षण प्रस्तुत कियाहै। राम सीताके वियोग के चार कारणों से सन्तप्त हो रहे है[1]।–सीता के प्रति उनके परिताप का कारण चतुर्मुखी है। धर्मशास्त्र आपत्ति में स्त्री की रक्षा करने का उपदेश होता है , परन्तु राम से यह न हो सका, अत: वह अबला स्त्री की रक्षा न कर सकते के कारण 'कारूण्य' से सन्तप्त हैं। बन में सीता राम की आश्रिता थी, परन्तु राम ने अपने आश्रित की रक्षा नहीं की,अत: 'आनृशंस्य'–आश्रित जनोंके संरक्षक –स्वभावसे सन्तप्त हैं। सीता उनकी पत्नी सहधर्मिणी ठहरी। उनके नष्ट होने पर

श्रीराम के धर्म का पालन क्योंकर हो सकेगा, अत: शोक से; वे उनकी प्रिया, प्रियतमा ठहरी, परम सुख की साधिका ठहरी। उस परम लावण्यमयी पत्नी के नाश ने उनके हृदय में अतीत के उस आनन्दमय जीवन की मधुर स्मृति जगा दी है- इस कारण' प्रेम' से। इन नाना भावों के कारण सीता के वियोग में राम सन्तप्त हो रहे हैं।

वाल्मीकि की दृष्टि में मानव-जीवन में सबसे श्रेष्ठ पदार्थ है और इसी चरित्र से युक्त व्यक्ति की खोज करने पर नारद जी ने वाल्मीकि को इक्ष्वाकुवंशी रामचन्द्र को सबसे श्रेष्ठ आदर्श मानव बतलाया। ब्रह्म को साक्षात् करने वाले, अनुष्टुप् छन्द के प्रथम अवतार के कारणभूत आदिकवि वाल्मीकि की परिणत प्रज्ञा का फल है यह वाल्मीकि रामायण मानव समाज, मानव-व्यवहार तथा मानव-सद्गुणों की पराकाष्ठा का पूर्ण निर्वाह हम राम के जीवन में पाते हैं। राम शारीरिक सुषुमा तथा मानसिक सौन्दर्य- दोनों के जीते-जागते प्रतीक थे। राम के सौन्दर्य के वर्णन में वाल्मीकि कह रहे हैं (2/17/13):-

न हि तस्मान्मन: कश्चित् चक्षुषी वा नरोत्तमात्।
नर: शक्नोत्यपाक्रष्टुमतिक्रान्तेऽपि राघवे॥

रामचन्द्र की अलौकिक सुषमा का अनुमान इसी घटना से लगायाजा सकता है कि राम के अत्यन्त दूर चले जाने पर कोई भी मनुष्य न तो अपने मन को उनसे खींच सकता था और न अपने दोनों नेत्रों को। जो राम को नहीं देखता और जिसे राम नहीं देखते – ये दोनों संसार में निन्दा के पात्र बनते हैं। इतना ही नहीं , उनकी अपनी आत्मा भी उन्हें निन्दा करती है। रामचन्द्र के दिव्य गुणों की यह झॉंकी कितनी मधुर तथा सुन्दर है (2/1/10-14) :-

स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं प्रभाषते।
उच्यमानोऽपि परूषं नोतरं प्रतिद्यते॥
बुद्धिमान् मधुरभाषी पूर्वाभाषी प्रियंवद:।
वीर्यवान न च वीर्येण महता स्वेन विस्मित:॥
न चानृतकथो विद्वान् वृद्धानां प्रतिपूजक:।
अनुरक्त: प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्यते॥

रामचन्द्र सदा शान्त –चित्त रहते थे। वे बड़ी कोमलता तथा मृदुता के साथ बोलते थे। उनसे कोई कितना भी रूखा क्यों न बोले, वे कभी भी कड़ा और रूखा उत्तर नहीं देते थे। किसी प्रकार किये गये एक भी उपकार से वह तुष्ट हो जाते थे, परन्तु सैकड़ों भी अपकारों को कभी स्मरण नहीं करते थे। किसी से भेंट होने पर भी वही पहिले बोलते थे और सदा मीठा बोलते थे। अत्यन्त वीर्यशाली थे, परन्तु इसके कारण उन्हें गर्व छूकर भी नहीं था। वे कभी झूठी बातें नहीं कहते थे । 'रामो द्विर्नाभिभाषते = राम कभी दो बात नहीं कहते थे, एक बार जो कह दिया सो कह दिया- प्रजाओं के साथ उनका सम्बन्ध बड़ा मीठा था।

1.6 महाभारत का संक्षिप्त परिचय

महाभारत की रचना पराशर के पुत्र वेदव्यास ने की है इन्हीं को पुराणों का भी रचयिता माना जाता है। वर्तमान में महाभारत में 100000 लोग पाए जाते हैं। इसे शतसाहस्त्रीसंहिता भी कहा गया है। महाभारत की रचना 1 दिन या 1 वर्ष में नहीं हुई है। गुप्त काल के शिलालेखों से पता चलता है कि उस समय तक महाभारत की रचना पूर्ण हो चुकी थी क्योंकि उन शिलालेखों में शतसाहस्त्रीसंहिता शब्द का प्रयोग मिलता है। ऐसा ग्रंथ है जिसके कथानकों में अनेक नायकों की उत्पत्ति होती है। विद्वानों द्वारा महाभारत की रचना के तीन स्वरूप बताए गए हैं- 1.जय 2. भारत 3. महाभारत

व्यास ने स्वयं लिखा है –**जयनामेतिहासोयम्**। प्रारंभ में महाभारत जय नाम से था, जिसमें मैकडॉनल के अनुसार 8800 श्लोक थे ।व्यास ने इसे अपने शिष्य वैशम्पायनको सुनाया था।जन्मेजय के सर्पयज्ञकरते समय वैशम्पायनने इसका पाठ उन्हें सुनाया। इन दोनों के संवादों के कारण इस ग्रंथ में संवर्धन हुआ तब इसका नाम भारत पड़ा । इस स्थिति में 24000 श्लोक हुए।महाभारत की तृतीय अवस्था में लोमहर्षण के पुत्रसौतिने शौनक को सुनाया। सभी का मानना है कि सौति के द्वारा ही महाभारत का पूर्ण संवर्धन होकर एक लाख श्लोकों का आकार दिया गया। महाभारत में कौरव तथा पांडवों की कथा वर्णित है , इसमें 18 पर्व है- आदिपर्व ,सभापर्व, वनपर्व, विराटपर्व, उद्योगपर्व, भीष्मपर्व ,द्रोणपर्व, कर्णपर्व, शल्यपर्व ,सौप्तिकपर्व, स्त्रीपर्व, शांति पर्व, अनुशासनपर्व, अश्वमेधपर्व ,आश्रमवासीपर्व, मौसलपर्व, महाप्रस्थानिकपर्व ,स्वर्गारोहणपर्व। सभी पर्वों में कौरव तथा पांडवों की पूर्ण कथा के साथ साथ महाकाव्य के लक्षणों पर घटित होने वाले सभी प्रकार के वर्णन पाए जाते हैं। महाभारत में कुल छ: उपाख्यान पाए जाते हैं। शकुंतलोपाख्यान आदिपर्व में है बाकी पॉच-- मत्स्योपाख्यान ,रामोपाख्यान,शिवि उपाख्यान, सावित्री उपाख्यान ,नलोपाख्यान सभी वन पर्व में पाए जाते हैं।

महाभारत धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, की वर्णन सामग्रियों से भरा हुआ एक विशालकाय ग्रंथ है। इसी के आख्यानोंसे कथा ग्रहणकरके बाद के कवियों ने बड़े-बड़े महाकाव्यों की रचनाएं की हैं। यह अलग की बात है कि महाकाव्य की परिभाषाएं बाद में लिखी गई जिनके आधार पर रामायण और महाभारत के समालोचक इन दोनों ग्रंथों को महाकाव्य मानते हैं। महाभारत में एक महाकाव्य की कसौटी के लिए सभी श्रेष्ठ वर्णन उपलब्ध होते हैं।

बोध प्रश्न 02

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या वाक्य मे लिखिए तथा इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए

1. रामायण किसकी रचनाहै ?
2. जिस पक्षी को वाल्मीकि ने देखा उसका नाम क्या है ?
3. क्रौंच नर को किसने मारा था ?
4. वाल्मीकि को रामचरित की रचना की प्रेरणा किससे प्राप्त हुई ?
5. महाभारत में कितने श्लोक हैं ?

6. महाभारत को कौन सी संहिता कहा जाताहै ?

अभ्यास प्रश्न 02

नीचे दिए गए प्रश्नों के उत्तर आप स्वयं लिखें।

1. रामायण की रचना के लिए कौन सी घटना प्रसिद्ध है इसके लिए पांच वाक्य में उत्तर लिखिए
2. महाभारत की रचना कितनी अवस्थाओं में हुई है इसके उत्तर में 10 वाक्य लिखिए
3. महाभारत के सभी पर्वों के नाम लिखिए

1.7 सारांश

महाकाव्य की उत्पत्ति एवं विकास से संबंधित इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि प्राचीन भारतीय साहित्य कविता का उद्भव क्रमशः वेदोंतथा रामायण काल से मान्य है। इसके लिए वैदिक सूक्त से लेकर नाराशंसी गाथाएं पुराणों के गीत भी प्रमाण हैं। संस्कृत व्याकरण के प्रसिद्ध आचार्यों ने भी महाकाव्यों की रचनाएं की हैं। रामायण की रचना के लिए क्रौंच पक्षी की कथा प्रसिद्ध है ,उसमें व्रह्मा ने अवतरित होकर बाल्मीकि को रामायण रचने की प्रेरणा दी। वस्तुतः महाकाव्यत्वकी सिद्धि के लिए कालांतर में अलंकारिक आचार्य जैसे विश्वनाथ ,दंडी आदि ने महाकाव्य के सूत्रबद्धलक्षण लिखे। किंतु उसके पूर्व ही लौकिक संस्कृत भाषा में रामायण और महाभारत नामक दो विशालकाय ग्रंथ लिखे जा चुके थे। इनमें बाद में लिखे गए लक्षणों की परीक्षा करने पर यह ग्रंथ महाकाव्य के रूप में ही प्रतिष्ठित हुए। इन्हीं दोनों ग्रंथों से कथानक का ग्रहण करके बाद के कवियों ने अपने अपने महाकाव्यों की रचनाएं की।जिनमें महाकाव्यों के विकास क्रम में महाकवि कालिदास का रघुवंश और कुमारसंभव ग्रहण किया जाता है। कालिदास के पश्चात बौद्ध धर्माचार्यव प्रसिद्ध कवि अश्वघोष का बुद्धचरित व सौन्दरानन्दनामक महाकाव्य इसी श्रेणी में गिने जाते हैं। जिनमें महाकाव्य के लिए सभी सामग्रियों के वर्णन उपलब्ध है। अश्वघोष के पश्चात अर्थ गौरव के लिए भारवि के कुमारसंभव नामक महाकाव्य का नाम प्रसिद्ध है जिसमें युधिष्ठिर द्वारा दुर्योधन की राजव्यवस्था का समाचार जानने के लिए वनेचरको गुप्तचर बनाकर भेजा जाता है। 18 सर्गोंके इस महाकाव्य में महाकाव्य की दृष्टि से सभी वर्णनों की परीक्षा की जा सकती है। इसी क्रम में रावणवध महाकाव्य के रचयिता महाकवि भट्टी भी महाकाव्य की रचना में कम नहीं है। कुमारदास का महाकाव्य जानकीहरण भी महाकाव्यता सिद्ध करता है। क्रमशः कालिदास की उपमा ,भारवि के अर्थ गौरव तथा श्री हर्ष के पदलालित्यको समन्वित करते हुए माघ ने शिशुपाल वध की रचना करके प्रतिष्ठा प्राप्त की। नैषधीयचरितश्री हर्ष की रचना है ,जिसमें नल दमयंती की कथा का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त महाकाव्य परंपरा में दशावतारचरित के रचयिता क्षेमेंद्र, श्रीकंठचरित के रचयिता मंखक तथा जैन कवि का महाकाव्य धर्मशर्माभ्युदयआते हैं। ऐतिहासिक महाकाव्य के क्रम में नवसाहशांकचरित तथा विक्रमांकदेव चरितम प्रसिद्ध हैं।इस इकाई के अध्ययन से आपने महाकाव्य रचना की संक्षिप्त परंपरा की जानकारी प्राप्त की है।

1.8 शब्दावली

1.लालित्य - कोमल पदों तथा अलंकारों के योग से लालित्य आता है

2. मतैक्य - एकमत होना।

3.संवाहक - आगे बढाने वाला।

4.अधिसंख्य – अधिक संख्या में।

5.उद्भव – उत्पन्न होना।

6.उपजीव्य – जिससे ग्रहण किया जाय वह उपजीव्य कहलाता है।

7- उपजीवी – जो ग्रहण करता है वह उपजीवी कहलाता है।

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 01

1.गलत

2.सही

3.सही

4.गलत

5.गलत

6.गलत

बोध प्रश्न 02

1.वाल्मीकि

2.क्रौंच

3.व्याध

4.ब्रह्मा से

5.एक लाख

6.शतसाहस्रीसंहिता

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

2.संस्कृत साहित्य का इतिहास –वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

3.संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ शिवमूर्ति शर्मा,दया पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद

4. वाल्मीकि रामायण – गीताप्रेस गोरखपुर

इकाई 2. संस्कृत गद्य साहित्य की परम्परा

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 गद्य परम्परा का परिचय

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 उपयोगी पुस्तकें

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

काव्यशास्त्र से सम्बन्धित प्रथम खण्ड की यह द्वितीय इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपनें संस्कृत पद्य साहित्य का इतिहास का अध्ययन किया है । इस इकाई में आप संस्कृत गद्य साहित्य की परम्परा के बारे में जानेंगे । वैदिक साहित्य में गद्य साहित्य का रूप उनमें वर्णित आख्यानों में दिखाई पड़ता है। इन आख्यानों में गद्य के साथ पद्य का भी भाग मिलता है जिसे ''गाथा'' कहते हैं। ऋग्वेद में 'नाराशंसी' गाथाओं का उल्लेख है। वैदिक गद्य में छोटे-छोटे सरल एवं सुबोध शब्दों का प्रयोग है।

इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव किस प्रकार हुआ।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप -

- संस्कृत गद्य साहित्य की परम्परा से अवगत हो सकेगे।
- बाणभट्ट आदि की कृतियों के विषय में जान सकेगे।
- संस्कृत गद्य परम्परा को बताएंगे।
- कादम्बरी की कथा व उसके अंश शुकनासोपदेश का परिचय बतायेंगे

2.3 गद्य परम्परा का परिचय

संस्कृत के श्रेष्ठ गद्यकवि - बाण

सुबन्धु की अलंकृत गद्यशैली के श्रेष्ठ कलाकार हैं बाणभट्ट। वस्तुतः बाण की शैली सुबन्धु की अलंकृत शैली की प्रौढ़ता के साथ दण्डी के पदलालित्य का भी समावेश करती है।

जीवन एवं समय

बाण ने अपनी रचनाओं में अपने विषय में पर्याप्त सूचनायें दी हैं। हर्षचरित के आरम्भ के उच्छवासों में उन्होंने अपने पूर्वजों तथा स्वयं अपना परिचय कथा के माध्यम से दिया है। इसी प्रकार उन्होंने कादम्बरी के आरम्भ के पद्यों में अपने वंश का वर्णन किया है। बाण के पिता का नाम चित्रभानु तथा माता का नाम राजदेवी था। शैशवावस्था में ही बाण की माता का निधन हो गया और चौदह वर्ष की अवस्था में वे पितृविहीन हो गये। युवावस्था में बाण किसी अनुशासन के बन्धन से मुक्त होकर इधर-उधर घूमने लगे। वे अनेक राजाओं के यहाँ भी गये और अनेक विद्वानों की संगति प्राप्त कर शास्त्रीय चर्चाएँ भी करते रहे। विविध प्रकार के कार्यों एवं जीवनवृत्तियों वाले अनेक लोग उनके मित्र थे। इन मित्रों की लम्बी सूची बाण ने अपनी हर्षचरित में दी है। इस देशाटन से उन्हें समाज के विभिन्न वर्गों का पर्याप्त ज्ञान और अनुभव प्राप्त हुआ।बाण सम्राट हर्षवर्धन के समकालीन थे। अतः उनका समय पर्याप्त निश्चित है। हर्षवर्धन ने 606 ई0 से 648 ई0 तक शासन

किया था। इस प्रकार बाण का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। अनेक बाह्य एवं आन्तरिक साहित्यिक प्रमाणों से भी बाण का यही समय सिद्ध होता है।

बाण की रचनायें

महाकवि बाण की तीन रचनायें मानी जाती हैं। मुकुटताडितक नाम का नाटक, हर्षचरित नाम की आख्यायिका तथा कादम्बरी नाम की कथा। इस नाटक का उल्लेख सरस्वतीकण्ठाभरण के प्रणेता भोज ने किया है और नलचम्पू के टीकाकार चंद्रपाल और गुणविजयगणि ने इसे बाण की रचना के रूप में निर्दिष्ट किया है। यह महाभारत के कथानक के ऊपर आधारित रचना थी, जिसमें अन्त में भीम दुर्योधन के मुकुट को तोड़ा डालते हैं। यह नाटक उपलब्ध नहीं है और यह सम्भावना की जा सकती है कि बाण की इस प्रकार की एकाध और रचनायें थीं, जो अनुपलब्ध हैं। चण्डीशतक नाम की एक ऐसी रचना बाण के नाम से उल्लिखित है।

हर्षचरितम्

बाण की गद्य रचना हर्षचरितम् एक आख्यायिका है। सम्भवतः हर्षचरित ही आख्यायिका के वर्ग में सबसे प्राचीन रचना है। इसका विभाजन आठ उच्छवासों में है। प्रथम उच्छवास के आरम्भ में 21 श्लोकों में कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों और उनकी कृतियों का प्रशंसापूर्वक स्मरण किया है, यथा व्यास, वासवदत्ता, भट्टार हरिश्चन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास, बृहत्कथा। हर्षचरित के आरम्भिक तीन उच्छवासों में बाण ने अपनी आत्मकथा ही मनोमन शैली में प्रस्तुत की है। उनका राजा हर्षवर्धन से किस प्रकार सम्पर्क हुआ, इसका भी विवरण यहाँ प्राप्त होता है। तृतीय उच्छवास में बाण अपने गाँव लौटकर आने तथा अपने चचेरे भाइयों के आग्रह पर हर्ष के चरित का वर्णन करने का उल्लेख करते हैं।हर्षचरित में वर्णित घटनायें संक्षेप में इस प्रकार हैं - चतुर्थ उच्छवास - राजा प्रभाकरवर्धन और रानी यशोमती का वर्णन क्रमशः उनके पुत्रों राज्यवर्धन और हर्षवर्धन तथा पुत्री राज्यश्री का जन्म होता है। राज्यश्री का मौखरिवंश के राजा ग्रहवर्मा के साथ विवाह होता है। पंचम उच्छवास - राज्यवर्धन अपने भ्राता हर्ष तथा सेना के साथ हूणों को जीतने के लिए प्रस्थान करता है, किन्तु पिता की बीमारी का समाचार सुनकर हर्ष वापस लौट आते हैं। यशोमती प्रभाकरवर्धन की मृत्यु होने के पूर्व सती हो जाती है। षष्ठ उच्छवास - राज्यवर्धन वापस लौटता है, पिता द्वारा हर्ष को राज्य का भार सौंप दिया जाता है, ग्रहवर्मा की मृत्यु हो जाती है और मालव नरेश राज्यश्री को बन्दी बना लेता है। राज्यवर्धन सेना सहित मालव नरेश पर आक्रमण के लिए प्रस्थान करता है और उस पर विजय प्राप्त करता है। गौड देश के राजा शशांक के साथ युद्ध में राज्यवर्धन की मृत्यु हो जाती है। सप्तम उच्छवास - हर्ष दिग्विजय यात्रा के लिए निकलता है और मालवराज पर विजय प्राप्त करता है। अष्टम उच्छवास - एक शबर द्वारा हर्ष को राज्यश्री के सती होने की तैयारी करने की सूचना दी जाती है। हर्ष राज्यश्री के पास पहुँचता है, बौद्ध भिक्षु दिवाकरमित्र द्वारा राज्यश्री को समझाया जाता है। हर्ष भी दिग्विजय के बाद गेरुआ वस्त्र धारण करने का निश्चय करता है।

कादम्बरी

बाणभट्ट की प्रख्यात गद्य रचना कादम्बरी एक कथा है। कथानक कवि-कल्पित हैं और इसमें चन्द्रापीड एवं पुण्डरीक के तीन जन्मों का वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। कादम्बरी दो भागों में है - पूर्वभाग और उत्तर भाग। पूर्व भाग सम्पूर्ण ग्रन्थ का दो तिहाई भाग है और इसे ही बाण की कृति माना गया है। उत्तर भाग की रचना बाण की मृत्यु के बाद उनके पुत्र भूषणभट्ट ने की है।कादम्बरी की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है। विदिशा नगरी के राजा थे शूद्रक, जो अत्यन्त प्रतापी और कलाविद् थे। एक दिन प्रातः वे अपनी राजसभा में बैठे थे, तभी प्रतीहारी ने आदेश प्राप्त कर एक चाण्डाल कन्या को सभा में प्रवेश कराया। चाण्डाल कन्या के हाथ में सोने का पिंजरा था, जिसमें वैशम्पायन नाम का शुक था। शुक ने अपना दाहिना चरण उठाकर श्लोक द्वारा राजा का अभिवादन किया।शुक द्वारा राजा शूद्रक के समक्ष कथा का आरम्भ - इस शुक के विषय में राजा को महान कौतूहल हुआ और चाण्डाल कन्या तथा शुक के भोजन एवं विश्राम कर लेने पर राजा ने उस शुक से अपने विषय में बताने को कहा। शुक ने अपनी कथा सुनाई और बताया कि वह विन्ध्याटवी में अपने वृद्ध पिता के साथ रहता था। एक बहेलिये ने अन्य शुकों के साथ उसके पिता का वध कर दिया और नीचे फेंक दिया। पिता के पंखों के भीतर छिपकर वह भी नीचे गिरा, किन्तु बच गया। अपने प्राण बचाने के लिए वह झाड़ियों में छिप गया और बहेलिये के चले जाने के बाद उस मार्ग से जाने वाले ऋषिकुमार हारीत उसे दयावश अपने साथ लेकर महर्षि जाबालि के आश्रम आये। जाबालि ने अपने शिष्यों को शुक के पूर्व जन्म की कथा इस प्रकार सुनाई।

जाबालि द्वारा आश्रम के शिष्यों के समक्ष शुक के पूर्व जन्म तथा चन्द्रापीड की कथा सुनाना - उज्जयिनी में तारापीड नाम के राजा थे। उनकी महारानी का नाम विलासवती था। राजा के महामन्त्री का नाम शुकनास और महामन्त्री की पत्नी का नाम मनोरमा था। बहुत दिनों की पूजा अर्चना के बाद राजा तारापीड को पुत्र की प्राप्ति हुई और उसी दिन शुकनास के यहाँ भी एक पुत्र ने जन्म लिया। राजा के पुत्र का नाम चन्द्रापीड तथा शुकनास के पुत्र का नाम वैशम्पायन रखा गया। दोनों ने साथ-साथ गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त की। चन्द्रापीड के गुरुकुल से लौटने पर पिता तारापीड ने उसका यौवराज्याभिषेक किया। इस अवसर के पूर्व चन्द्रापीड मन्त्री शुकनास से मिलने गया और शुकनास ने एक सारगर्भित उपदेश दिया, जो शुकनासोपदेश नाम से प्रसिद्ध है। अभिषेक के बाद चन्द्रापीड दिग्विजय यात्रा पर निकला। अनेक राजाओं को परास्त कर वह हिमालय के निकट विश्राम करने के लिए रुका। एक दिन शिकार खेलने के लिए निकलने पर उसने किन्नर-मिथुन को देखा और उत्सुकतावश उनका पीछा करते हुए बहुत दूर निकल गया। किन्नर-मिथुन अदृश्य हो गये, तब जल की खोज में वह अच्छोद सरोवर के पास पहुँचा। वहाँ जल पीकर अपने अश्व को बाँधकर विश्राम करने लगा, तब ही उसे वीणा की ध्वनि सुनायी पड़ी, जिसकी खोज करते हुए उसने सरोवर के तट पर स्थित शिव के मन्दिर में वीणा बजाकर स्तुति करती हुई एक युवती को देखा। उसे देखकर वह चकित हुआ। युवती उसे अपने आश्रम में ले गयी और उसने फल आदि से

चन्द्रापीड का सत्कार किया। चन्द्रापीड के आदरपूर्वक प्रश्न करने पर उस युवती ने, जिसका नाम महाश्वेता था, अपनी कथा इस प्रकार सुनाई।

महाश्वेता द्वारा अपनी कथा सुनाना

महाश्वेता ने बताया कि वह गन्धर्वराज हंस तथा गौरी नाम की अप्सरा की पुत्री है। एक दिन वह अपने माता के साथ सरोवर पर आयी तो उसे पुष्प की अद्भुत गन्ध मिली तब उसने एक ऋषिकुमार को देखा, जिनके कान के ऊपर अद्भुत गन्ध वाला पुष्प था। साक्षात्कार होते ही दोनों एक दूसरे की ओर प्रेम से आकृष्ट हो गये। ऋषिकुमार का नाम पुण्डरीक था। उनके साथ उनका मित्र कपि´जल था। महाश्वेता पुण्डरीक से पुष्प लेकर अपने भवन चली आयी, किन्तु पुण्डरीक उसके विरह में अतिशय सन्तप्त हो उठे। कपि´जल ने महाश्वेता से मिलकर आग्रह किया कि अविलम्ब पुण्डरीक से मिलकर उसके प्राणों को बचा लीजिए। रात्रि को जब उपयुक्त समय देखकर महाश्वेता सरोवर के पास पहुँची तब तक पुण्डरीक के जीवन का अन्त हो चुका था। महाश्वेता पुण्डरीक के शरीर से लिपट कर विलाप करने लगी। उसी समय चन्द्रमण्डल से एक दिव्य पुरुष निकला और पुण्डरीक के शव को लेकर आकाश में चला गया। जाते-जाते उसने महाश्वेता से कहा कि इससे तुम्हारा अवश्य मिलन होगा। तब से महाश्वेता अपने प्रियतम से मिलन की आशा में भगवान शिव की आराधना में लगी हुई है।

कादम्बरी की कथा

रात्रि में विश्राम के समय महाश्वेता ने चन्द्रापीड से अपनी सखी कादम्बरी के विषय में बताया कि कादम्बरी गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री है और अपने माता-पिता के बार-बार कहने पर भी विवाह के लिए सहमत नहीं हो रही है। दूसरे दिन महाश्वेता चन्द्रापीड को साथ लेकर कादम्बरी से मिलने गयी। वहाँ चन्द्रापीड और कादम्बरी में बातें हुई और वे परस्पर प्रगाढ़ प्रेम बन्धन में बँध गये। कादम्बरी से मिलकर वापस महाश्वेता की कुटी में आने पर चन्द्रापीड को अपनी सेना मिली और पिता का पत्र मिला, जिसमें उसे तत्काल राजधानी बुलाया गया था। चन्द्रापीड ने अपनी पानवाली पत्रलेखा को कादम्बरी के पास भेजा और स्वयं राजधानी चला गया। कुछ दिन बाद पत्रलेखा जब लौटकर राजधानी पहुँची, तो उसने चन्द्रापीड से कादम्बरी की विरहदशा का वर्णन किया। चन्द्रापीड को इसी समय यह सूचना मिली कि उसका मित्र वैशम्पायन, जो महामन्त्री शुकनास का पुत्र था, अच्छोद सरोवर में स्नान करने के बाद वहाँ से लौटना नहीं चाहता, वह वहाँ पागल की तरह कुछ ढूँढ़ रहा है। चन्द्रापीड उसे वापस ले आने के लिए चल पड़ा। महाश्वेता ने बताया कि एक ब्राह्मण युवक उसके पास आकर प्रणय निवेदन करने लगा, जिस पर कुपित होकर उसने उसे शुक बन जाने का शाप दे दिया। वह शुक बन गया, तब ज्ञात हुआ कि वह चन्द्रापीड का मित्र वैशम्पायन था। अपने मित्र से बिछुड़ने और कादम्बरी से मिलन की सम्भावना न होने के दुःख में चन्द्रापीड भी तत्काल निर्जीव होकर भूमि पर गिर पड़ा। उधर कादम्बरी यह सुनकर कि चन्द्रापीड महाश्वेता की कुटी में आये हैं, बड़ी आशा से मिलने के लिए आयी, किन्तु उसे उसका शव ही मिला। परम दुःख से व्यथित होकर वह सती होने के लिए उद्यत हुई, किन्तु एक आकाशवाणी ने

उसे आश्वस्त किया कि उसका चन्द्रापीड से मिलन होगा। वह चन्द्रापीड के मृत शरीर की रखवाली करने लगी। उसी समय पत्रलेखा चन्द्रापीड के अश्व इन्द्रायुध को लेकर सरोवर में कूद गयी। कुछ क्षण बाद सरोवर से एक ब्राह्मण युवक निकला, जो पुण्डरीक का मित्र कपि´जल था। उसने महाश्वेता को बताया कि पुण्डरीक पृथ्वी पर वैशम्पायन शुक के नाम से उत्पन्न हुआ है और वह भी एक ऋषि के शाप से इन्द्रायुध नाम का अश्व बन गया था। उसी ने महाश्वेता से यह भी बताया कि उसने जिसे शुक बन जाने का शाप दिया था वह कोई और नहीं पुण्डरीक था, तब महाश्वेता छाती पीट-पीट कर रोने लगी। कपि´जल ने उसे आश्वासन दिया कि अब उसके दुःखों का अन्त निकट है और वह स्वयं आकाश में चला गया। अपने पुत्रों की मृत्यु का समाचार जानकर राजा तारापीड, महारानी विलासवती तथा महामन्त्री शुकनास और उनकी पत्नी मनोरमा भी उस स्थान पर आये। तारापीड वहीं तपस्या में लग गये। मूर्च्छित कादम्बरी होश में आयी और चन्द्रापीड के शरीर की सेवा में लग गयी।

शुक का राजा शूद्रक से अपने विषय में बताना

राजा शूद्रक के समीप चाण्डालकन्या द्वारा लाये गये शुक ने राजा से अपने विषय में आगे की कथा इस प्रकार बतायी - महर्षि जाबालि ने जब अपने शिष्यों को मुझसे सम्बद्ध जो कथा सुनायी, उससे मुझे अपना पूर्वजन्म स्मरण हो आया और मुझे यह ज्ञात हो गया कि मैं ही महामन्त्री शुकनास का पुत्र वैशम्पायन हूँ। जब मेरे पंख निकल आये, तब मैं अपने मित्र चन्द्रापीड को ढूँढ़ने निकला, किन्तु चाण्डाल कन्याद्वारा पकड़ लिया गया।

चाण्डाल कन्या द्वारा कथा को पूरी करना

इसके बाद चाण्डाल कन्या ने राजा को बताया कि राजा शूद्रक ही चन्द्रापीड हैं। वह स्वयं लक्ष्मी है और वैशम्पायन उसका पुत्र है। राजा शूद्रक को अपना पूर्व जन्म याद हो आया। उधर महाश्वेता की कुटी में वसन्त छा गया और कादम्बरी ने जैसे ही चन्द्रापीड के शरीर का आलिंगन किया, वह ऐसे जीवित हो उठा जैसे नींद से जागा हो। उसी समय शूद्रक ने भी अपना शरीर त्याग दिया। महाश्वेता की कुटी में कुछ ही क्षण में पुण्डरीक अपने मुनिकुमार वाले रूप में प्रकट हुआ और उसका महाश्वेता से मिलन हो गया। सर्वत्र आनन्द छा गया।

इस प्रकार इस कथा का नायक है चन्द्रापीड और नायिका है कादम्बरी। सहनायक और सहनायिका हैं - पुण्डरीक और महाश्वेता। यह तीन जन्मों की मिली-जुली कहानी है, जिसका अधिकांश भाग शुक द्वारा महर्षि जाबालि की कथा के अनुसार शूद्रक से कहा जाता है। कादम्बरी के आरम्भ में बाण ने बीस पद्यों में मङ्गलाचरण, सज्जन की प्रशंसा और दुर्जन की निन्दा, अपने वंश के पूर्वजों का आलंकारिक एवं मनोरम वर्णन, तथा कथा के गुणों का उल्लेख किया है। चन्द्रापीड की ताम्बूलकरंकवाहिनी पत्रलेखा, जो चन्द्रापीड के चले आने पर भी कादम्बरी के पास रह गयी थी, लौटकर चन्द्रापीड की राजधानी आती है, इस वर्णन के साथ ही कादम्बरी कथा का पूर्वभाग समाप्त होता है।

कादम्बरी की समीक्षा

कादम्बरी एक कथा है और कथा का कथानक कविकल्पित होता है, फिर भी बाण की कादम्बरी की कथा गुणाढ्य की बृहत्कथा के कथानक से कई समानताएँ प्रदर्शित करती हैं, जिससे यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बाण को कादम्बरी कथा की प्रेरणा गुणाढ्य की बृहत्कथा से मिली है। इसका संस्कृत रूपान्तर सोमदेव का कथासरित्सागर है, जो बाण के समय के बहुत बाद रचा गया। बाण में कथानक को सजाने और जीवन्त बनाने की विलक्षण प्रतिभा है जिससे कादम्बरी कथा अद्वितीय रूप प्राप्त कर लेती है।कादम्बरी की मुख्य कथा के साथ प्रसंगवश अनेक स्थलों पर बाण ने लम्बे वर्णन किये हैं और अपनी कविप्रतिभा एवं अलंकार प्रयोग का भरपूर प्रदर्शन किया है, जिससे ऐसे स्थलों पर कथा की गति मन्थर हो गयी है, किन्तु उन वर्णनों का अपना सौन्दर्य पाठक को इतना अधिक बाँध लेता है कि वह कथा के इस मन्द प्रवाह की ओर ध्यान नहीं दे पाता। यद्यपि कादम्बरी कथा की घटनायें जटिल हैं, तथापि वे मुख्य कथा के साथ दृढ़ता से जुड़ी हुई हैं। उसमें उस प्रकार की जटिलता नहीं है जैसी जटिलता दण्डी के दशकुमारचरित में मिलती है। कथा के प्रति पाठक के उत्सुकता बनाये रखने में बाण दक्ष हैं। कादम्बरी में प्रत्येक घटना का वर्णन अगली घटना के लिए जिज्ञासा उत्पन्न करता है।

पात्र चित्रण

बाण को जीवन के हर क्षेत्र का पूरा अनुभव था। यही कारण है कि वे पुत्रों के चरित्र-चित्रण में अपने अनुभव और निरीक्षण की प्रतिभा के कारण सफल हुए हैं। हर्षचरित में तो उन्हें इसके लिए अवसर ही नहीं मिला है, किन्तु कादम्बरी में वे अनेक प्रकार के चरित्रों का सूक्ष्म वर्णन कर सके हैं। कादम्बरी के चन्द्रापीड, पुण्डरीक, कादम्बरी और महाश्वेता जैसे उच्च वर्ग के पात्र तो हैं ही, साथ ही बाण ने चाण्डालकन्या और शबर सेनापति जैसे अरण्यवासी पात्रों का भी सफलतापूर्वक चित्रण किया है। जाबालि, हारीत और कपिञ्जल जैसे ऋषियों एवं मुनि कुमारों के वर्णन भी स्वाभाविक हैं। बाण ने अतिमानवीय पात्रों को मानवीय धरातल पर लाकर स्वर्ग और पृथ्वी, गन्धर्वलोक तथा मुनियों के आश्रम को एक साथ सम्बद्ध कर दिया है। उनका प्रत्येक चरित्र अपने आप में विस्मय और रहस्य से परिपूर्ण है। उनके चरित्रों में एक असाधारण आकर्षण और औदात्य है। प्रेम के उदात्त स्वरूप का दर्शन बाण ने महाश्वेता और कादम्बरी के चरित्रों द्वारा कराया है। कादम्बरी अपने मृत प्रियतम से मिलन की आशा में सम्पूर्ण समर्पण से उसके शरीर की रक्षा और सेवा करती है और महाश्वेता अपने प्रियतम की प्राप्ति के लिए तपस्या का आदर्श प्रस्तुत करती है। इन चरित्रों के प्रति एक स्वाभाविक श्रद्धा भाव पाठक के मन में उत्पन्न होता है। भाग्य की क्रूर विडम्बना से बार-बार छली गयी महाश्वेता नारी के धैर्य एवं सहिष्णुतामय गाम्भीर्य का उदाहरण प्रस्तुत करती है। बाण ने अपने प्रमुख नारीपात्रों में एकनिष्ठ एवं त्यागमय प्रेम और चरित्र का बल दिखाकर प्रेम के अलौकिक पक्ष को आलोकित किया है। पुण्डरीक तपस्वी का आदर्श रूप है, किन्तु युवावस्था में स्वभावतः मन को कामविकार किस प्रकार वशीभूत कर लेता है, इसका प्रबल उदाहरण भी बाण ने इस चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया है। काम के वशीभूत पुण्डरीक अपना जीवन भी त्याग देता है। चन्द्रापीड एक आज्ञाकारी पुत्र, योग्य शासक, वीर सेनानी होने के साथ ही

एक आदर्श मित्र और आदर्श प्रेमी है। वस्तुतः बाण ने मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण की अद्भुत क्षमता कादम्बरी में प्रदर्शित की है।

वर्णन की सुन्दर शैली

गद्यकवि बाण की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी वर्णन की प्रतिभा है। वे अपनी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति द्वारा प्रत्येक चित्र अथवा भावना का सजीव वर्णन करते हैं। वर्णन कौशल द्वारा वे किसी वस्तु या स्थिति का शब्दों द्वारा चित्र बनाकर उसके रूप, रस, गन्ध का इन्द्रिय-प्रत्यक्ष सा करा देते हैं। कथामुख में ही राजसभा में उन्नत सिंहासन पर बैठे हुए राजा शूद्रक का, सभाभवन की प्रत्येक वस्तु का वे उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं से इतना विस्तृत वर्णन करते हैं कि पाठक स्वयं को वहाँ उपस्थित सा अनुभव करने लगता है। विन्ध्याटवी की भयावहता तथा पम्पासरोवर की निर्मलता का वर्णन भी इसी प्रकार का है। सभाभवन में बैठे राजा शूद्रक का यह वर्णन द्रष्टव्य है -

प्रविश्य च नरपतिसहस्रमध्यवर्तिनमशनिभयपुलिजतकुलशैलमध्यगतमिव कनकशिखरिणम्, अनेकरत्नाभरणकिरणजालकान्तरितावयमिन्द्रायुधसहस्रस´छादिताष्टदिग्विभागमिव जलधरदिवसम,अवलम्बितस्थूलमुक्ताकलापस्यकनकशृङ्खलानियमितमणिदण्डिकाच तुष्टयस्य गगनसिन्धुफेनपटलपाण्डुरस्य नातिमहतो दुकूलवितानस्याधस्तादिन्दुकान्तमणिपर्यङ्कनिषण्णम् ...

इसी प्रकार महाश्वेतावृत्तान्त में महाश्वेता की कुटी की एक-एक वस्तु का वर्णन बाण इस प्रकार करते हैं कि पाठक स्वयं को वहाँ उपस्थित जैसा अनुभव करता है -

हिमहारहरहासधवलैश्चोभयतःक्षरद्भिर्निर्झरैर्द्वारावलम्बितचलच्चामरकलापामिवोपलक्ष्य माणाम् अन्तःस्थापितमणिकमण्डलुमण्डलाम्,एकान्तावलम्बितयोगपट्टिकाम्, विशाखिकाशिचारनिबद्धनारिकेलीफलवल्कल धौतोपानद्युगोपेताम् ... इन्दुमण्डलेनेव टङ्कोत्कीर्णेव शङ्खमयेनेव भिक्षाकपालेनाधिष्ठितां सन्निहितभस्मालाबुकां गुहाम् अद्राक्षीत्।

सौन्दर्य चाहे प्रकृति का हो या मानव-रूप का, बाण उसके वर्णन में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते। विन्ध्याटवी, पम्पासरोवर, अच्छोद सरोवर के वर्णन में, महाश्वेता की कुटी बनी हुई गुफा के वर्णन में या वसन्त ऋतु के आगमन के वर्णन में उनके प्रकृति वर्णन का सौन्दर्य देखा जा सकता है। बाण ने वर्णन के लिए विषयों का इतना व्यापक क्षेत्र चुना है कि विद्वानों का यह कथन सर्वथा समीचीन है कि '**बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्**'।

रस की अभिव्यक्ति की कला

श्रेष्ठ गद्यकार बाण रस की अभिव्यंजना में भी सफल हैं। कथा की प्रशंसा के माध्यम से अपनी ही कथा की विशेषताओं का संकेत करते हुए वे कहते हैं -

स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव।।

वस्तुतः बाण ने अपनी वर्णन-प्रतिभा से प्रत्येक वर्णन में रस भर दिया है। उन्होंने कादम्बरी में शृङ्गार रस परिणामतः वासनात्मक नहीं है। महाश्वेता और पुण्डरीक का तथा कादम्बरी एवं महाश्वेता का प्रेम ऐसा ही आदर्श एवं उदात्त प्रेम है। संयोग-शृङ्गार की तीखी अभिव्य´जना का एक उदाहरण पुण्डरीक और महाश्वेता के प्रथम मिलन के वर्णन में देखा जा सकता है -

तदा तस्याप्यभिनवागतं मदनंप्रत्युद्गच्छन्निव रोमोद्गमः प्रादुरभवत्। मत्सकाशमभिप्रस्थितस्य मनसो मार्गमिवोपदिशद्भिः पुरः प्रवृत्तं श्वासैः। वेपथुगृहीता व्रतभङ्गभीतेवाकम्पतकरतलगताक्षमाला। द्वितीयमेव कर्णावसक्तकुसुमम´जरी कपोलतलासंगिनी समदृश्यत स्वेदसलिसीकरजालिका।

विप्रलम्भ की अभिव्य´जना पुण्डरीक और कादम्बरी की वियोगावस्था के वर्णन में द्रष्टव्य है। महाश्वेता और कादम्बरी का विलाप इस कथा को करुण रस से आप्लावित कर देते हैं। बाण की रसाभिव्यक्ति पाठक को कथा में इस प्रकार विभोर कर देती है कि उत्सुकता और रोचकता आदि से अन्त तक कम नहीं होती। बाण की रसाभिव्यक्ति की दक्षता का ही यह परिचायक है कि पाठक पात्रों के साथ दुःख में दुःखी और आनन्द में आनन्दित अनुभव करता है। कादम्बरी के रस और भावपक्ष को लेकर विद्वज्जन इतने अधिक प्रभावित रहे हैं कि ये सूक्तियाँ सटीक ही हैं -

कादम्बरीरसज्ञानामाहारोपि न रोचते।

कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम्।

अभ्यास प्रश्न 1 -

1.निम्न में से एक बाणभट्ट की रचना है

क. कुमारसम्भव ख. हर्षचरितम्

ग. किरातार्जुनीयम् घ. शाकुन्तलम्

2.बाण का समय है

क. सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध

ख. सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध

ग. छठी शताब्दी

घ. आठवीं शताब्दी

रिक्त स्थन की पूर्ति कीजिए

3. हर्षचरित एक .... है।

4. स्फुरत्कलालाप .... कोमला।

सत्य असत्य का चयन करें

5. महाश्वेता गन्धर्वराज हंस तथा गौरी की पुत्री है ( )

6. वैशम्पायन अच्छोदसरोवर से स्नान करके लौटना चाहता था ( )

बाण की गद्यशैली

बाण से पूर्व सुबन्धु ने दुरूह श्लिष्ट पदावली से युक्त अलंकृत गद्यशैली का प्रयोग किया था। दण्डी की शैली में सरलता थी। बाण ने इन दोनों प्रकार की शैलियों का अपूर्व सन्तुलन प्रस्तुत किया और वर्ण्य विषय के अनुरूप पदावली का प्रयोग करते हुए गद्य के परिनिष्ठित स्वरूप को उपस्थापित किया। बाण की गद्यशैली का आदर्श वही है जिसे उन्होंने स्वयं अपने शब्दों में दुर्लभ कहा है -

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।।

अर्थात् नया अर्थ, सुन्दर स्वभावोक्ति, श्लेष अलंकार, रस तथा अक्षरों की दृढबन्धता - ये सभी एक साथ दुर्लभ हैं। शब्दचयन की दृष्टि से बाण की गद्यशैली को पाऽचाली रीति माना गया है। इस रीति में अर्थ के अनुरूप शब्दों की योजना होती है। सुतरा, बाण एक कलावादी कवि हैं और कला उनके वश में है। वे शृङ्गार में कोमल एवं सरस शब्दों का और वीभत्स आदि के वर्ण में कठोर वर्णों का प्रयोग करते हैं। दीर्घ समस्त पदों का प्रयोग गद्य में ओजोगुण उत्पन्न करता है और उसे ही गद्य का जीवन कहा गया है। बाण ने अपने गद्य में समासों के अवसरानुकूल प्रयोग का असाधारण उदाहरण प्रस्तुत किया है। शुकनासोपदेश के निम्नलिखित उदाहरण उनकी शैली की विविधता को स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार कहीं दीर्घसमासों वाली भाषा का तो कहीं अत्यन्त सरल वाक्यों का प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त हैं।

कष्टमनऽजनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा।सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः। नित्यमस्नानशौचवध्यो बलवान् रागमलावलेपः। अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुखसंनिपातनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे।

बाण की समास रहित शैली का एक उदाहरण यह है -

न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपामालोकयते। न कुलक्रमानुवर्तते, न शीलं पश्यति, न वैदग्ध्यं गणयति, न श्रुतमाकर्णयति, न धर्ममनुरुध्यते, न त्यागमाद्रियते, न विशेषज्ञतां विचारयति, नाचारं पालयति, न सत्यमनुबुध्यते।

जहाँ भी इस प्रकार के उपदेश के प्रसंग हैं अथवा प्रेम या शोक आदि भावनाओं के अवसर हैं, वहाँ बाण की शैली प्रायः समासहीन या अल्प समास वाली है।

अलंकार-प्रयोग

बाण की शैली का सौन्दर्य उनके अलंकारों के प्रयोग पर आधारित है। इस शैली का आकर्षण श्लिष्ट उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं में निहित है। इससे वर्णन में सजीवता आ गयी है। उपमा, दीपक, श्लेष, स्वभावोक्ति, विरोधाभास, रूपक एवं परिसंख्या उनके प्रमुख अलंकार हैं। अपने अलंकार-प्रयोग की ओर उन्होंने स्वयं ही संकेत किया है।

हरन्ति कं नोज्जवलदीपकोपमैर्नवैपदार्थैरुपपादिता कथाः।
निरतन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव।।

इनकी उपमाएँ प्रायः श्लिष्ट हैं और विशेषण की शाब्दिक समानता पर आधारित हैं। यथा -

अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचितमूलदण्डकोश मण्डलमपि मु´चति भूभुजम्, लतेव विटपकानध्यारोहति। गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गबुद्बुद्च´चला, दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसंक्रान्तिः पातालगुहेव तमोबहुला हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया, प्राविडिवाचिरद्युतिकारिणी, दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पस्वत्त्वमुन्मत्तीकरोति।

इनके विरोधाभास का एक उदाहरण इस प्रकार है -

सततमूष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति। तोयराशिसंभवापि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानाप्यशितप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्तयपि लघिमानमापादयति।

उत्प्रेक्षालंकार का एक उदाहरण इस प्रकार द्रष्टव्य है -

अभिषेकसमय एव चैतेषां मङ्गलकलशजलैरिव प्रक्षाल्पते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिरिवापह्रियते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोकदर्शनम्।

बाण द्वारा प्रयुक्त अनुप्रासालंकार उनकी शैली में एक मनोरम नादसौन्दर्य उत्पन्न करते हैं। शुकनासोपदेश से कुछ उदाहरण ये हैं -

अप्रदीपप्रभापनेयम्। सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः। इन्द्रियहरिणहारिणी। अखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम् सुभटखड्गमण्डलोत्पलविभ्रमभ्रमरी। गजघटितघनघटा। मूलदण्डकोश मण्डलम्। धनलवलाभावलेप-।

अपनी विशिष्टि शैली के कारण निश्चय ही बाण सर्वश्रेष्ठ गद्यकवि हैं। उन्होंने बाद के अनेक गद्यकवियों को प्रभावित किया है। संस्कृत के विद्वानों में बाण की शैली की प्रशंसा में अनेक सूक्तियाँ प्रचलित हैं।

बाण की प्रशस्ति में प्रचलित सूक्तियाँ

जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह।। **- गोवर्धनाचार्य।**

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य। **- धर्मदास।**

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरे
ऽलंकारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः।। **चन्द्रदेव।**

केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् क्वीन्।

किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्दकृतसन्निधिः।। **-धनपाल**

हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत् कवि-कुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्।। **-त्रिलोचन भट्ट**

सहर्षचरितारम्भाद्भुतकादम्बरीकथा।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दं भ्रमति क्षितौ।- **राजशेखर**

बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती। **- सोड्ढल**

शुकनासोपदेश-संक्षेप

राजा तारापीड का पुत्र राजकुमार चन्द्रापीड गुरुकुल में निवास और अध्ययन समाप्त कर अपने माता-पिता के पास लौटा आता है। कुछ दिन बीतने पर राजा तारापीड उसका यौवराज्याभिषेक करने का निश्चय करते हैं। राजा तारापीड के सुयोग्य और विद्वान प्रधानामात्य थे शुकनास। यौवराज्याभिषेक की तिथि निर्धारित हो जाने पर एक दिन राजकुमार चन्द्रापीड शुकनास से मिलने जाता है। शुकनास चन्द्रापीड को राजलक्ष्मी की चंचलता और उसके अनेक दोषों का कारण बताते हुए एवं युवावस्था के विकारों का उल्लेख करते हुए चन्द्रापीड को सावधान रहकर आत्मनियन्त्रण एवं सतर्कता बरतने का उपदेश देते हैं, जो संक्षेप इस प्रकार है -

यौवन के अविवेक रूपी अन्धकार का प्राबल्य तथा लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्य प्राप्ति से उत्पन्न विकार - नयी युवावस्था स्वभावतः प्रबल अविवेक रूपी अज्ञान को उत्पन्न करती है, जो सूर्य की किरणों से दूर नहीं हो पाता, रत्नों के प्रकाश से कटता नहीं और प्रदीपों की ज्योति से भगाया नहीं जा सकता। लक्ष्मी की प्राप्ति से मनुष्य में जो अहंकार उत्पन्न हो जाता है वह ऐसा नशा है जो उतरता नहीं। दर्प के दाह का ज्वर शीतल पदार्थों के उपचार से दूर होने वाला नहीं होता। विषयभोगों की लालसा विषम विष के आस्वादन के समान ऐसी बेहोशी ला देती है जो टूटती नहीं। विषयभोगों का आकर्षण ऐसी गन्दगी का लेप लगा देता है जो स्नान या धाने से जाता नहीं। जन्म से ही ऐश्वर्य पा लेना, नयी युवावस्था, अद्वितीय सुन्दर रूप और सामान्य मनुष्यों से अधिक शारीरिक बल से युक्त होना - इनमें प्रत्येक अविनय का घर है और जहाँ ये सब मिलकर विद्यमान हों, वहाँ तो कुछ कहना ही नहीं। यौवन के आरम्भ में शास्त्र ज्ञान से निर्मल हुई बुद्धि भी कलुषित हो जाती है। दृष्टि में कामुकता बनी रहती है। विषयोपभोग की मृगतृष्णा पुरुष को उनके पीछे दौड़ाती रहती है। एक बार जब मन में विकार उत्पन्न हो जाता है तो वे ही विषयसुख और मधुर प्रतीत होने लगते हैं और परिणाम यह होता है कि पुरुष भटक कर नष्ट हो जाता है।

गुरुपदेश का महत्व

जिसके मन में विकार नहीं समाया हुआ है, उसी की बुद्धि में गुरुजनों के उपदेश प्रवेश करते हैं। इसके विपरीत जो स्वभावतः दुष्ट है उसके लिए तो गुरुजनों के वचन कानों में शूल जैसे कष्टदायी प्रतीत होते हैं। गुरुपदेश मन के अन्धकार को दूर करता है और बुद्धि का विकास कर वृद्धावस्था जैसी समझ उत्पन्न कर देता है। कोई उच्च कुल में उत्पन्न हो इतने मात्र से ही उसमें अविनय की सम्भावना समाप्त नहीं होती। गुरुपदेश एक गम्भीरता ला देता है, एक चमक उत्पन्न कर देता है।

विशेषतः राजाओं के लिए तो इसका महत्त्व और अधिक है। उनके लिए हितकारी परामर्श देने वालों का अभाव होता है। जनसमाज तो उनके आदेश का भयवश अनुगमन ही करता है। दर्प के कारण राजाओं के कान सूज कर बहरे हो जाते हैं। वे सुनते हुए भी हाथी के समान आँखें बन्द कर उपेक्षा करते हैं। अहंकार के दाहज्वर की मूर्च्छा इन **राजाओं पर छायी रहती है।**

लक्ष्मी का प्रवञ्चनामय स्वभाव

लक्ष्मी में वक्रता, चंचलता, नशा, मूर्च्छा उत्पन्न करने की शक्ति और कठोरता सहज रूप में विद्यमान होती है। ऐसा कोई नहीं है जिसे इसने धोखा न दिया हो। मिल जाने पर भी लक्ष्मी की रक्षा बड़े कष्ट से होती है। लक्ष्मी किसके पास पहुँच जाय, इसका ठिकाना नहीं। यह परिचय, कुलपरम्परा, शील, विदग्धता, शास्त्रज्ञान, धर्म, त्याग, विशेषज्ञता, आचार और सत्यशीलता का विचार नहीं करती। देखते-देखते गायब हो जाती है। क्रूर और साहस के कर्म करने वालों के अधीन हो जाती है। शक्तिशाली राजा को भी क्षण भर में छोड़ देती है। सरस्वती के भक्तों से तो ईर्ष्या ही रखती है। गुणवान, उदार, सज्जन, कुलीन, वीर, दानी, विनम्र और मरस्वी पुरुष के समीप नहीं जाती। यह पुरुष में तृष्णा को बढ़ाने, क्षुद्रता उत्पन्न करने का ही कार्य करती है। यह इन्द्रियों को फाँसती है, मनुष्य को कुकर्मों की ओर प्रेरित करती है और उत्तम चरित्र को कलंकित कर देती है, मनुष्य में क्रोध उत्पन्न करती है और सदाचार एवं सद्गुणों को समाप्त कर देती है। यह धूर्तता सिखाती है और कामवासना को बढ़ाने के साथ धर्मबुद्धि का सम्पूर्ण नाश कर देती है। जो राजा किसी प्रकार इसकी कृपा पा लेते हैं, वे सभी अवगुणों, दुर्गुणों, अधर्म, अहंकार, अक्षमा और अदूरदर्शिता से ग्रस्त हो जाते हैं। कुछ दूसरे राजा पागल जैसे होकर विषयभोगों की ओर दौड़ते हैं और मानो असंख्य इन्द्रियों द्वारा अधिक से अधिक भोगों का सुख पाना चाहते हैं। वे सब कुछ स्वर्णमय देखने लगते हैं। ऐसे राज अत्याचारी होकर निरन्तर पाप करते जाते हैं, सैकड़ों व्यसनों में पड़कर अधोगति को प्राप्त होते हैं। ऐसे राजाओं की चापलूसी में लगे धूर्त उनके दोषों को गुण के रूप में बखान कर उन्हें ऐसे भ्रम में डाल देते हैं जैसे वे देवता के ही अवतार हों और वे राजा भी ऐसे भ्रम में देवताओं की तरह आचरण करने लगते हैं तथा उपहास के पात्र बनते हैं। गर्व से चूर ये राजा किसी को दर्शन देना भी कृपा करना दृष्टिपात करना, उपकार, वार्तालाप कर लेना, धन का दान देना तथा किसी को आज्ञा देना वरदान देना समझते हैं। वे अहंकार से देवों औश्र गुरुजनों का सम्मान नहीं करते, किसी की बात नहीं सुनते। वे धूर्तों और चापलूसों को ही अपने समीप रखते हैं, उन्हीं को लाभ पहुँचाते हैं और उन्हीं को प्रमाण मान लेते हैं, जो सभी कार्यों को छोड़कर उनकी स्तुति में लगा रहता है।

चन्द्रापीड को कर्त्तव्य हेतु उद्बोधन

अपने उपदेश को समाप्त करते हुए शुकनास ने चन्द्रापीड को इस प्रकार आचरण एवं व्यवहार करने को कहा जिससे मित्र, सज्जन, गुरुजन, विद्वानों को असन्तोष या शोक न हो, जिससे धूर्त, विट, लम्पट, भ्रष्ट स्त्रियाँ और धोखेबाज लोग अपयश फैलाने, धन की लूट-खसोट करने, व´चना

और फँसाने के कार्यों में सफल न हों। सबसे पहले दिग्विजय यात्राओं से पहले पिता द्वारा जीते गये भी राजाओं को परास्त कर अपने प्रताप को सुदृढ़ कीजिए, जिससे आपकी आज्ञा का कोई उल्लंघन न कर सके।

शुकनास के उपदेश को सुनकर चन्द्रापीड ने अपूर्व निर्मलता और प्रसन्नता का अनुभव किया और कुछ समय शुकनास के पास रुकने के बाद अपने भवन को लौट आया।

शुकनासोपदेश के अन्तर्गत सूक्तियाँ

(यद्यपि शुकनासोपदेश अधिकांशतः सूक्ति के समान है, तथापि निम्नलिखित सूक्तियाँ विशेष्ज्ञतः उल्लेखनीय हैं)

1-निसर्गत एवं अतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्।

2-अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः।

3-अन´जनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्।

4-अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा।

5-यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः।

6-अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवित यूनां दृष्टिः।

7-अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः।

8-गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा सर्वा।

9-इन्द्रियहरिणहारिणी सततदुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका।

10-नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्त्तकः पुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु।

11-अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः।

12-गुरुवचनममलमपि सलिलमिवमहदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य।

13-कुसुमशरशरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिवगलत्युपदिष्टम्।

14-अकारणं च भवित दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य।

15-गुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षमजलं स्नानम।

16-प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्।

17-अहंकारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वलाहि राजप्रकृतिः।

18-अलीकाभिमानोन्मादकारिणी धनानि।

19-राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः।

20-(लक्ष्मीः) सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिङ्गति।

21-(लक्ष्मीः) जनं गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति।

22-नहि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः यो वा न विप्रलब्धः।

23-तरलहृदयमप्रतिबुद्धं च मदयन्ति धनानि।

24-विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीः।

25-आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति।

अभ्यास प्रश्न 2

1.बाण किस रीति के कवि हैं

क. वैदर्भी ख. पांचाली ग. गौड़ी घ. कुछ नहीं

2. **वाणी बाणो बभूव** किसने कहा है

क. बाणभट्ट ख. दण्डी ग. चन्द्रदेव घ. गोवर्धनाचार्य

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

3. न .... रक्षति।

4. बाण .... चक्रवर्ती।

सत्य और असत्य का ज्ञान करें

5.लक्ष्मी के प्रवंचनामय स्वभाव का वर्णन कादम्बरी में किया गया है ( )

6.' बाणस्तु पंचानन :' धनपाल नें कहा है ( )

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न

1- सुबन्धु की अलंकृत गद्यशैली के श्रेष्ठ कलाकार कौन है ?

2- बाणभट्ट ने अपने पूर्वजों तथा स्वयं अपना परिचय किसके माध्यम से दिया है?

3- बाणभट्टनें कादम्बरी के आरम्भ के पद्यों में किसका वर्णन किया है?

4- महाकवि बाण की कितनी कृतियाँ प्रसिद्ध हैं?

5- महाकवि बाणभट्ट की कौन सी तीन कृतियाँ हैं?

6- बाणभट्ट के पिता का नाम क्या था?

7- बाणभट्ट की माता का नाम क्या था?

8- किस अवस्था में बाण की माता का निधन हो गया?

9- बाणभट्ट कितने वर्ष की अवस्था में पितृविहीन हो गये?

10- युवावस्था में बाण किसके बन्धन से मुक्त होकर इधर-उधर घूमने लगे?

11- बाणभट्ट ने अपने मित्रों की लम्बी सूची किसमें दी है?

12- बाणभट्ट किसके समकालीन थे?

13- हर्षवर्धन ने कबसे कबतक शासन किया था ?

14- बाण की गद्य रचना हर्षचरितम् क्या है?

15- बाणभट्ट की प्रख्यात गद्य रचना कादम्बरी क्या है?

संस्कृत गद्य साहित्य में शिवराजविजय

शिवराजविजय: शिवराजविजय एक ऐतिहासिक उपन्यास है इसमें वर्णित कथा ऐतिहासिक हैं, किन्तु व्यास जी ने अपनी प्रतिभा और कल्पना के सहारे उसे उच्च कोटि की साहित्यिकता प्रदान कर दी है। कथा अधिकांश रूप में मौलिक होते हुये भी उसमें साहित्यिक कल्पना का समावेश है। इसमें कथा-वस्तु की संघटना प्राच्य और पाश्चात्य शिल्प के समन्वय से की गई है। यद्यपि इसमें दो

स्वतन्त्र धाराएँ समानान्तर रूप से प्रवाहित होती हैं- एक के नायक शिवाजी हैं तो दूसरी के नायक रघुवीरसिंह हैं, तथापि एक-दूसरे से पूर्ण स्वतन्त्र और निरपेक्ष नहीं। एक-दूसरे के पूरक हैं। एक का महत्त्व दूसरे से उद्भासित होता है। अतः दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। कथा में इतना प्रवाह और सम्प्रेषणीयता है कि पाठक की आकांक्षा उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती जाती है। शिवराजविजय की सम्पूर्ण कथा तीन निःश्वासों में समाहित है।

व्यास जी के शिवराजविजय में इतिहास और कल्पना, आदर्श और यथार्थ अनुभव और कल्पना का सुन्दर समन्वय है। उनके सभी पात्र अपने चरित्र निर्वाह में पूरी तरह से खरे उतरते हैं। वीर शिवाजी, गौरसिंह, रघुवीरसिंह, यशवन्तसिंह, अफजलखाँ, शाइस्तखाँ तथा ब्रह्मचारी आदि सदा अपनी स्वाभाविकता और यथार्थता का निर्वाह करते हैं। इसमें न कहीं अतिशयता है और न कहीं न्यूनता या अस्पष्टता।शिवराजविजय वीर रस प्रधान काव्य है तथापि उपकारी रूप में सभी रसों का चित्रण है। व्यास जी ने अलंकार-विधान में सदैव सजगता दिखाई है। यद्यपि इनका वर्णन कहीं पर अलंकृत नहीं है तथापि अनावश्यक अलंकारभार से बोझिल भी नहीं है।गद्यकारों में सर्वाधिक अलंकार-विधान बाण ने किया है। यदि इस क्षेत्र में उनके साथ व्यास जी को देखा जाय तो अन्तर यह दिखेगा कि इनकी कृति अनपेक्षित अलंकार-भार से बोझिल नहीं है।शिवराजविजय की शैली अत्यन्त सरल, सरस प्रवाहमयी है। भाषा की सरलता और भाव की उत्कृष्टता का समन्वय ही कवि की प्रमुख विशेषता होती है। कविकथ्य जितना ही सरल और सुन्दर ढंग से कहा जाय, काव्य उतना ही हृदयग्राही और 'सद्यः परिनिवृतये' की भावना को प्राप्त करने वाला होता है।अस्तु, 'शिवराजविजय' भाषा और भाव दोनों ही दृष्टि से एक उत्तम कोटि का काव्य कहा जा सकता है। इसमें प्रतिभा की प्रौढ़ता, कल्पना की सूक्ष्मता, अनुभव की गहनता, अभिव्यक्ति की स्पष्टता, भावों की यथार्थता और रमणीयता पदावलियों की मधुरता, कथानक की प्रवाहमयता, आदर्श की स्थापना, शिव की भावना और सुन्दर की सुन्दरता निहित है। उपन्यास की दृष्टि से भी कथानक, पात्र, घटना, संवाद, अन्तद्र्वन्द, आकांक्षा आदि तत्त्वों से पूर्ण है और 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' की कसौटी पर खरा उतरता है।

शिवराजविजय का काव्य शिल्प

भाषा शैली - मनोगत भावों को परहृदय संवेद्य बनाने का प्रमुख साधन भाषा है और भाषा की क्रमबद्धता या रचना-विधान को ही सम्भवतः शैली भी कहा जाता है। अतः सामान्यतः 'भाषा-शैली' से ऐसा प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। इस आधार के साथ यह कहा जा सका है कि काव्य में मनोगत भावों को मूर्त रूप प्रदान करने का प्रमुख एवं सहज साधन 'शैली' है। 'शब्दार्थौ सहितो काव्यम्' के परिप्रेक्ष्य में यदि अर्थ काव्य की आत्मा है तो शब्द अर्थात् शैली काव्य का शरीर। अतः भाव की मनोहरता, स्थिरता और सूक्ष्मता शैली पर ही निर्भर होती है। डा0 श्यामसुन्दर दास के अनुसार किसी कवि या लेखक की शब्द -योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, उसकी बनावट और ध्वनि आदि का नाम ही शैली है। दण्डी के काव्यादर्श में - 'अस्त्यनेको गिराममार्गः सूक्ष्मभेदपरस्परम्' कहा है। इन भावनाओं के अनुसार स्थूलतः शैली के दो भेद किये जाते हैं - (1)

समास शैली (2) व्यास शैली। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के आधार पर आजकल विद्वानों ने मार्ग (शैली) को चार प्रकार का माना है। किन्तु अनन्तर काल में इन्हें शैली न कहकर रीतियाँ कहा जाने लगा है। ये रीतियाँ चार हैं- (1) वैदर्भी, (2) गौणी, (3) पांचाली, और (4) लाटी।

(1) कोमल वर्णों और असमानता अथवा अल्पसमासा, माधुर्यपूर्ण रचना वैदर्भी रीति है।

(2) महाप्राण-घोषवर्णा, ओजगुणसम्पन्ना तथा समास बहुला रचना गौणी है।

(3) वैदर्भी और गौणी का सम्मिश्रण पांचाली रीति है।

(4) वैदर्भी और पांचाली का सम्मिश्रण लाटी रीति है।

शिवराजविजय की भाषा सरल, सुबोध एवं स्पष्ट है। पदावलियों के प्रयोग वण्र्य-विषय के अनुसार होने चाहिये। एक ही विधा प्रत्येक वर्णन को प्रभावमय नहीं बना सकती और व्यास जी ने ऐसा ही किया है। अतः कहा जा सकता है कि शिवराजविजय में उचित शब्दावलियों का प्रयोग, अर्थपूर्ण वाक्यविन्यास तथा अवसर के अनुकूल कोमल तथा कठोर वर्णों का प्रयोग किया गया है।

2.4 सारांश

इस इकाई इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि लौकिक संस्कृत गद्य का सर्वप्रथम दर्शन हमें बाण की रचनाओं में मिलता है। निश्चय ही ये गद्य-काव्य के चरमोत्कर्ष के प्रतीक हैं। शुकनास ने चन्द्रापीड को इस प्रकार आचरण एवं व्यवहार करने को कहा जिससे मित्र, सज्जन, गुरुजन, विद्वानों को असन्तोष या शोक न हो, जिससे धूर्त, विट, लम्पट, भ्रष्ट स्त्रियाँ और धोखेबाज लोग अपयश फैलाने, धन की लूट-खसोट करने, वंचना और फँसाने के कार्यों में सफल न हों। सबसे पहले दिग्विजय यात्राओं से पहले पिता द्वारा जीते गये भी राजाओं को परास्त कर अपने प्रताप को सुदृढ़ कीजिए, जिससे आपकी आज्ञा का कोई उल्लंघन न कर सके।यौवन के अविवेक रूपी अन्धकार का प्राबल्य तथा लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्य प्राप्ति से उत्पन्न विकार - नयी युवावस्था स्वभावतः प्रबल अविवेक रूपी अज्ञान को उत्पन्न करती है, जो सूर्य की किरणों से दूर नहीं हो पाता, रत्नों के प्रकाश से कटता नहीं और प्रदीपों की ज्योति से भगाया नहीं जा सकता। लक्ष्मी की प्राप्ति से मनुष्य में जो अहंकार उत्पन्न हो जाता है वह ऐसा नशा है जो उतरता नहीं। दर्प के दाह का ज्वर शीतल पदार्थों के उपचार से दूर होने वाला नहीं होता। विषयभोगों की लालसा विषम विष के आस्वादन के समान ऐसी बेहोशी ला देती है जो टूटती नहीं। विषयभोगों का आकर्षण ऐसी गन्दगी का लेप लगा देता है जो स्नान या धाने से जाता नहीं। जन्म से ही ऐश्वर्य पा लेना, नयी युवावस्था, अद्वितीय सुन्दर रूप और सामान्य मनुष्यों से अधिक शारीरिक बल से युक्त होना - इनमें प्रत्येक अविनय का घर है और जहाँ ये सब मिलकर विद्यमान हों, वहाँ तो कुछ कहना ही नहीं। यौवन के आरम्भ में शास्त्र ज्ञान से निर्मल हुई बुद्धि भी कलुषित हो जाती है।बाण की शैली का सौन्दर्य उनके अलंकारों के प्रयोग पर आधारित है। इस शैली का आकर्षण श्लिष्ट उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं में निहित है। इससे वर्णन में सजीवता आ गयी है। उपमा, दीपक, श्लेष, स्वभावोक्ति, विरोधाभास, रूपक एवं परिसंख्या उनके प्रमुख अलंकार हैं।

2.5अभ्यास प्रश्नों केउत्तर

अभ्यास प्रश्न 1.

1. ख 2. क 3. आख्यायिका 4. विलास 5. सही 6. गलत

अभ्यास प्रश्न 2.

1. ख 2. घ 3. परिचय 4. कविनामिह 5. सही

6. गलत

अतिलघुत्तरीय के उत्तर

(1) बाणभट्ट (2) कथा के माध्यम से दिया है (3) अपने वंश का वर्णन किया है

(4) तीन कृतियाँ।

(5) हर्षचरित, कादम्बरी, और मुकुटताडितक

(6) चित्रभानु (7) राजदेवी था (8) शैशवावस्था में

(9) चौदह वर्ष की अवस्था में (10) अनुशासन के बन्धन से

(11) हर्षचरित में दी है (12) हर्षवर्धन के समकालीन थे

(13) 606 ई0 से 648 ई0 तक (14) आख्यायिका (15) एक कथा है

2. 6सदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
1- कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
2- शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

3-संस्कृत साहित्य का इतिहास . बलदेव उपाध्याय प्रकाशक, शारदा निकेतन वी, कस्तूरवानगर सिगरा वाराणसी

2.7 उपयोगी पुस्तकें

1.ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बाणभट्ट का विस्तृत परिचय दीजिये।
2. बाण की गद्य शैली की विवेचना कीजिए।
3. शुकनासोपदेश का परिचय दीजिए।
4. शिवराजविजय का विस्तृत परिचय दीजिये

इकाई .3 संस्कृत नाटकों का उद्भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 नाट्य का अर्थ

3.4 नाट्य साहित्य का उद्भव

3.4.1 उद्भव विष्यक भारतीय मत

3.4.2 उद्भव विषयक पाश्चात्य मत

3.5 संस्कृत नाट्य साहित्य का विकास

3.5.1 भास और नाटक

3. 5.2 कालिदास और नाटक

3.5.3 अश्वघोषऔर नाटक

3.5.4 श्रीहर्ष और नाटक

3.5.5 भवभूतिऔर नाटक

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.10 उपयोगी पुस्तकें

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत नाटक से सम्बन्धित यह तृतीय इकाई है। जैसा कि आपने पूर्व में अध्ययन किया है की साहित्यशास्त्र में काव्य के दो भेद हैं दृश्य काव्य, श्रव्य काव्य। श्रव्य काव्य में आनन्दानुभूति कल्पना मार्ग से प्राप्त होती है जबकि दृश्य काव्य के द्वारा आनन्द की प्राप्ति रंगमंच पर साकार होती है। इसी दृश्य काव्य को रूप या रूपक के नाम से जाना जाता है। प्रस्तुत इकाई में आप यह जानेगें कि नाटक किसे कहते हैं। इसकी उत्पत्ति तथा विकास किस प्रकार हुआ। संस्कृत नाटकों के विकास में किसका योगदान है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेगें कि नाटक किसे कहते हैं। संस्कृत नाटकों का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ। महाकवि भास, शूद्रक, कालिदास अश्वघोष, हर्ष, भवभूति आदि महाकवियों का संस्कृत नाटकों में क्या योगदान है। नाटकों के द्वारा सहृदय सामाजिक को आनन्द की प्राप्ति होती जो मानव के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसकी उपयोगिता से परिचित करा सकेगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेगें कि —

- नाटक किसे कहते हैं तथा इनका उद्भव किस प्रकार हुआ।
- उद्भव से सम्बन्धित भारतीय एवं पाश्चात्य मतों को समझा पायेगें।
- यह बता सकेगें कि कालिदास का जन्म कब और कहां हुआ था।
- कालिदास की रचनाओं के बारे में बता सकेगें।
- भास, शूद्रक, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति आदि के नाटकों के नाम बता सकेगे।

3.3 नाट्य शब्द का अर्थ

साहित्यशास्त्र में काव्य के दो भेद हैं 1 दृश्य काव्य ,श्रव्य काव्य। दृश्य काव्य के द्वारा भावक किसी भी घटना या वस्तु का चाक्षुष ज्ञान ग्रहण करता है, किन्तु श्रव्य काव्य के द्वारा केवल श्रवण ही प्राप्त होता है। श्रव्य काव्य में आनन्दानुभूति कल्पना मार्ग से प्राप्त होती है जबकि दृश्य काव्य के द्वारा इसी आनन्द की प्राप्ति रंगमंच पर साकार रूप से होती है। जिसका अभिनय किया जा सके उसे दृश्य काव्य कहते हैं 'दृश्यं तत्राभिनेयं'। इसी दृश्य काव्य को रूप या रूपक संज्ञा से भी जाना जाता है। रूपक शब्द की निष्पत्ति रूप धातु में ण्वुल प्रत्यय के योग से होती है। ये दोनों ही शब्द साहित्य में 'नाट्य' के द्योतक है। नाट्यशास्त्र में 'दशरूप' शब्द का प्रयोग नाट्य की विधाओं के अर्थ में हुआ है। अब प्रश्न यह उठता है कि नाट्य क्या है ? दशरूपककार आचार्य धनंजय नाट्य की परिभाषा इस प्रकार देते हैं —'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' अर्थात् अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं।

3.4 नाट्य साहित्य का उद्भव

संस्कृत रूपकों के उद्भव एवं विकास का प्रश्न भी नाम रूपात्मक जगत की सृष्टि के समान विवादास्पद है। अधिकांश विद्वानों का दृष्टिकोण है कि परमात्मा ने जिस प्रकार नामरूपात्मक जगत की सृष्टि की है उसी प्रकार नाट्य विद्या की भी नाट्य विद्या के सम्बन्ध में भारतीय तत्ववेत्ता मनीषी यह अवधारणा रखतें हैं कि इसकी उत्पत्ति के मूल में परमात्मा ही है। यहां हम भारतीय एवं पाश्चात्य मतों को संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं —

1.4.1 उद्भव सम्बन्धी भारतीय मत

दैवीय उत्पत्ति सिद्धान्त — नाट्य विद्या की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शुभंकर ने अपने संगीत दामोदर में लिखा है कि एक समय देवराज इन्द्र ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे एक ऐसे वेद की रचना करें जिसके द्वारा सामान्य लोगों का भी मनोरंजन हो सके। इन्द्र की प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा ने समाकर्षण कर नाट्य वेद की सृष्टि की। सर्वप्रथम देवाधिदेव शिव ने ब्रह्मा को इस नाट्य वेद की शिक्षा दी थी और ब्रह्मा ने भरतमुनि को और भरत मुनि ने मनुष्य लोक में इसका इसका प्रचार प्रसार किया। इस प्रकार शिव ,ब्रह्मा भरत मुनि नाट्य विद्या के प्रायोजक सिद्ध होते हैं।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाट्यविद्या के उद्भव के सम्बन्ध में कहा है कि सभी देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे जनसामान्य के मनोरंजन के लिए किसी ऐसी विधा की रचना करें। उनके इस कथन से ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य सामवेद से गायन यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस ग्रहण करके इस नाट्य वेद नामक पंचम वेद की रचना की। दशरूपककार आचार्य धनंजय ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। भारतीय विद्वानों की यह मान्यता है कि पृथ्वी पर सर्वप्रथम इन्द्रध्वज महोत्सव के समय पर नाट्य का अभिनय हुआ था।

संवादसूक्त सिद्धान्त — इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों का विचार है कि ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में संवाद प्राप्त होते हैं। यथा — 'यम यमी संवाद', पुरूरवा उर्वशी,शर्मा पाणि संवाद,इन्द्रमरूत, इन्द्र इन्द्राणी ,विश्वामित्र नदी आदि प्रमुख संवाद है। यजुर्वेद में अभिनय सामवेद में संगीत और अथर्ववेद में रसों की संस्थिति है। इन्हीं तत्वों से धीरे धीरे रूपको का विकास हुआ।

3.4.2 उद्भव सम्बन्धी पाश्चात्य मत

संस्कृत नाटकों के उद्भव के सम्बन्ध में पाश्चात्य विचारकों के मत इस प्रकार है।

वीरपूजा सिद्धान्त — पाश्चात्य विद्वान डा0 रिजवे का मत है कि रूपकों के उद्भव में वीर पूजा का भाव मूल कारण है। दिवंगत वीर पुरूषों के प्रति समादर का भाव प्रकट करने की रीति ग्रीस, भारत आदि देशों में अत्यधिक प्राचीन काल से है। दिवंगत आत्माओं की प्रसन्नता के लिए उस समय रूपकों का अभिनय हुआ करता था। परन्तु डा0 रिजवे के इस सिद्धान्त से विद्वान सहमत नहीं हैं।

प्रकृति परिवर्तन सिद्धान्त — डा0 कीथ के मतानुसार प्राकृतिक परिवर्तन को मूर्त रूप में देखने की स्पृहा ने इस सिद्धान्त को जन्म दिया। इसके प्रबल समर्थक डा0 कीथ प्रकृति परिवर्तन से नाटक की

उत्पत्ति को स्वीकार करते हैं। 'कंसवध' नामक नाटक में हम इसके मूर्त रूप का दर्शन कर सकते हैं

परन्तु डा0 कीथ के इस मत को भी विद्वानों का समर्थन प्राप्त न हो सका।

पुत्तलिका नृत्य सिद्धान्त —जर्मन के प्रसिद्ध विद्वान डा0 पिशेल संस्कृत नाटक का उद्भव पुत्तलिकाओं के नृत्य तथा अभिनय से मानते हैं। 'सूत्रधार' एवं स्थापक शब्दों का नाटक में प्रयोग हुआ है। इन शब्दों का सम्बन्ध पुत्तलिका नृत्य से है महाभारत, बाल रामायण ,कथासरित्सागर इत्यादि में दारूमयी , पुत्तलिका आदि शब्दों का प्रयोग इस मत को पुष्टता प्रदान करते हैं। परन्तु विद्वानों के मध्य यह मत भी सर्वमान्य न हो सका।

छाया नाटक सिद्धान्त — छाया नाटकों से रूपक की उत्पत्ति एवं विकास का समर्थन करने वाले प्रसिद्ध विद्वान डा0 लूथर्स एवं क्रोनो है। अपने मत के समर्थन में वे महाभाष्य को प्रगाढ रूप में प्रस्तुत करते हैं। महाभाष्य में शौभिक छाया नाटकों की छाया मूर्तियों के व्याख्याकार थे पर दूतांगद नामक छाया नाटक अधिक प्राचीन नही है। अत: इसे नाटकों की उत्पत्ति का मूलकारण मानना न्यायोचित नहीं। अत: विद्वानों का यह मत भी अधिक मान्य नहीं हुआ।

मेपोलनृत्य सिद्धान्त — इस सिद्धान्त के समर्थक इन्द्रध्वज नामक महोत्सव को नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण स्वीकार करते हैं। पाश्चात्य देशों में मई के महीने में लोग वसन्त की शोभा को देखकर एक लम्बा बाँस गाडकर उसके चारों तरफ उछलते कूदते एवं नाचते गाते हैं। यह इन्द्रध्वज जैसा ही महोत्सव है ऐसे ही उत्सवों से शनै: शनै: नाटक की उत्पत्ति हुई। परन्तु दोनो महोत्सवों के समय में पर्याप्त अन्तर है तथा इनके स्वरूप में भी परस्पर भिन्नता है अत: यह सिद्धान्त भी सर्वमान्य नहीं है। उपर्युक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ विद्वान लोकप्रिय स्वांग सिद्धान्त तथा वैदिक अनुष्ठान सिद्धान्त को भी रूपकों की उत्पत्ति का कारण मानते हैं। किन्तु विद्वान इस मत से भी सहमत नहीं हैं। विद्वानों के उपर्युक्त मतों के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुचंते हैं कि रूपकों के उद्भव का विषय अत्यन्त विवादास्पद है। प्राचीन भारतीय परम्परा नाट्यवेद का रचयिता ब्रह्मा को इंगित करती है और लोक प्रचारक के रूप में भरतमुनि को निर्दिष्ट करती है। आधुनिक विद्वान इससे भिन्न मत रखते हैं ग्र्यपि यह माना जा सकता है कि इन मतों में से कोई मत नाटक की उत्पत्ति का कारण हो सकता है परन्तु यह कहना अत्यन्त कठिन है कि अमुक मत ही नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण है।

3.5 नाटक का विकास

ऋग्वेद से ही हमें नाट्य के अस्तित्व का पता चलने लगता है। सोम के विक्रय के समय यज्ञ में उपस्थित दर्शकों के मनोरजंन के लिए एक प्रकार का अभिनय होता था। ऋग्वेद के संवाद सूक्त भी नाटकीयता का द्योतन करते हैं। यजुर्वेद में 'शैलूष' शब्द का प्रयोग किया गया है जो नट (अभिनेता) वाची शब्द है। सामवेद में तो संगीत है ही। इस प्रकार नाटक के लिए आवश्यक तत्व गीत, नृत्य,वाद्य सभी का प्रचार वैदिक युग में था। यह निश्चित है कि भारतीय नाट्य परम्परा के मूल उदगम ग्रंथ वेद ही है। आदिकाव्य रामायण में नाट्य तत्त्वों का उल्लेख हुआ है। महर्षि वेदव्यास प्रणीत महाभारत में भी नट, नर्तक, गायक, सूत्रधार आदि का स्पष्ट उल्लेख है। हरिवंशपुराण में उल्लेख हुआ है कि कोबेररम्भाभिसार नामक नाटक का अभिनय हुआ था जिसमें

शूर रावण के रूप में और मनोवती ने रम्भा का रूप धारण कर रक्खा था। मार्कण्डेय पुराण में भी काव्य संलाप और गीत शब्द के साथ नाटक का भी प्रयोग हुआ है। संस्कृत भाषा के महान वैयाकरण महर्षि पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में नट सूत्रों का स्पष्ट उल्लेख किया है। महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' नामक नाटकों का उल्लेख करते हुए 'शोभनिक' शब्द का प्रयोग किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नट,नर्तक, गायक एवं कुशीलव शब्दों का प्रयोग हुआ है।भरतमुनि नाट्यशास्त्र के प्रमुख आचार्य माने गये हैं। भरतमुनि ने सुप्रसिद्ध 'नाट्यशास्त्र' की रचना की है। इसमें नाट्य से सम्बन्धित विषयों का विधिवत् विवेचन हुआ है। इन्होनें कोटल शाण्डिल्य, वात्सम, धूर्तिल आदि आचार्यो के नामों का उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इनके समय तक अनेक नाटकों की रचना हो चुकी थी और नाट्यकला का विधिवत् विकास हो चुका था। वेदों से लेकर भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र के अनुशीलन से हम यह कह सकते हैं कि संस्कृत नाटकों की रचना पुरातन काल से होती चली आ रही है परन्तु परिष्कृत नाटकों की रचना ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पूर्वाद्ध में मानी जाती है। संस्कृत नाटकों में महाकवि भास के नाटक अत्यधिक प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए हैं। परिष्कृत रूपक रचनाओं में भास के रूपकों को प्राचीन माना जाता है। भास के पश्चात् शूद्रक, कालिदास,अश्वघोष, हर्ष, भवभूति, विशाखादत्त, मुरारि,शक्तिभद्र, दामोदर मिश्र, राजशेखर, दिंगनाग, कृष्ण मिश्र, जयदेव, वत्सराज आदि आते हैं। इनके उच्चकोटि के नाटकों ने संस्कृत साहित्य की सम्यक् श्री वृद्धि की है। यहाँ पर हम कतिपय कवियों के नाटकों पर प्रकाश डाल रहे हैं -

अभ्यास प्रश्न 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

1* नाट्यशास्त्र के रचयिता का नाम लिखिए।

2* महाभारत के रचयिता का नाम लिखिए।

3 पुत्तलिका नृत्य सिद्धान्त किस विद्वान का मत है।

4* नाटक के उद्भव से सम्बन्धित कौन से दो मुख्य मत है।

अभ्यास प्रश्न 2•

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर हाँ या नहीं में दीजिये।

(क) नाट्य शास्त्र के रचयिता पिगंल ऋषि है।

(ख) कालिदास का जन्म ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में हुआ था।

(ग) अष्टाध्यायी महर्षि पाणिनी की रचना है।

(घ) रघुवंश खण्डकाव्य है।

(ङ) अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक है।

3.5.1 भास

भास के नाटक विषयानुसार ५ श्रेणी में आते हैं –

(क)रामकथाश्रित – १. प्रतिमा तथा २. श्रभिषेक।
(ख)महाभारताश्रित- ३. पन्चरात्र, ४. मध्यम व्यायोग, ५. दूत घटोत्कच, ६. कर्णाभार, ७. दूतवाक्य, ८. उरूभंग।
(ग) भागवताश्रित – ९. बालचरित।
(घ) लोककथात्मक – १०. दरिद्रचारूदत्त और ११. अविमारक।
(ङ) उदयन कथाश्रित – १२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, १३. स्वप्नवासवदत्त।

इनमें कतिपय नाटक – महाभारताश्रित रूपक – एक ही अंक में समाप्त हैं । अत: उन्हें 'एकांकी रूपक' कहा जा सकता है । इन रूपकों का संक्षिप्त परिचय यहाँ इसी क्रम से प्रस्तुत किया जाता है।

(१) **प्रतिमा नाटक** – राम का वनवास, सीताहरण आदि आयोध्या काणड से लेकर रावणवध तक की घटनाओं का वर्णन इस नाटक में किया गया है। इस नाटक से प्राचीन भारत में कला-विषयक नवीन वृत्तांत का पता लगता है। प्राचीनकाल में राजाओं के देवकुल होते थे जिनमें मृत्यु के अनंतर राजाओं की पत्थर की बड़ी मूर्तियाँ स्थापित की जाती थी। इक्ष्वाकुवंश का भी ऐसा ही देवकुल था जिसमें मृत नरेशों की मूर्तियाँ स्थापित की जाती थी। केकेयदेश से आते समय अयोध्या के समीप देवकुल में स्थापित दशरथ की प्रतिमा को देखकर ही भरत ने उनकी मृत्यु का अनुमान आप ही आप कर लिया। इसी कारण इसका नाम 'प्रतिमा'-नाटक' है।
(२) **अभिषेक नाटक** – इसमें राम के राज्याभिषेक का तथा किष्किधा, सुंदर और लंकाकांड के कथानक का वर्णन किया गया है। इन दोनों नाटकों में बालकांड को छोड़कर रामायण के शेष कांडों की कथाएँ आ गई है।
(३) **पन्चरात्र**- महाभारत की एक घटना को लेकर यह नाटक रचित है। द्रोणा ने दुर्योधनसे पांडवों को आधा राज्य देने के लिये कहा। दुर्योधन ने प्रतिज्ञा की कि पाँच रातों में यदि पांडव मिल जायँगे तो मैं उन्हें राज्य दे दूँगा। द्रोणा के प्रयत्न रकने पर पांडव मिल गये और दुर्योधन ने उन्हें आधा राज्य दे दिया। यह घटना कल्पित है और महाभारत में नहीं मिलती ।
(४) मध्यमव्यायोग
(५) दूतघटोत्कच
(६) कर्णाभार
(७) दूतवाक्य
(८) उरूभंग – ये नाटक महाभारत की विशिष्ट तत्तत् घटनाओं से सम्बद्ध है।
(९) बालचरित – कृष्ण के बालचरित से सम्बद्ध है।
(१०) दरिद्रचारूदत्त – धनहीन परन्तु चरित्रसंपन्न ब्राह्मण चारूदत्त तथा गुणाग्राहिणी वारवनिता
(११) वसंतसेना का आदर्श प्रेम वर्णित है।
(१२) अविमारक – प्राचीन आख्यायिका का नाटकीय रूप है जिसका संकेत कामसूत्र में मिलता
(१३) है । इस नाटक में अविमारक तथा राजा कुंतिभोज की पुत्री कुरंगी के प्रेम का वर्णन किया गया है । प्रणय का चित्रण बहुत ही सुंदर तथा सरस है।

(१४) प्रतिज्ञायौगन्धरायण – कौशाम्बी के आखेट के प्रेमी राजा उदयन को कृत्रिम हाथी के छल से उज्जयिनी-नरेश महासेन ने पकड़ लिया। इस रूपक में उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण ने दृढ़ प्रतिज्ञा करके केवल राजा को ही बन्धन से नहीं छुड़या, बल्कि कुमारी वासवदत्त का भी कपट से हरण कराया। मन्त्री की दृढ़-प्रतिज्ञा तथा कुटिलनीति का यह सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है।

(१५) स्वप्नवासवदत्तम् – भास के उपर्युक्त नाटको में स्वप्नवासवदत्तम् सर्वश्रेष्ठ नाट्यकृति है। इसमें उदयन तथा वासवदत्ता की प्रेमकथा का वर्णन है। विशुद्ध प्रेम के वर्णन के अतिरिक्त नाटकीय घटनाओं का अद्भुत संयोजन इस नाटक की अपनी विशेषता है।

3.5.2 कालिदास

विक्रमोर्वशीयम् , मालविकाग्निमित्रम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् कालिदास के प्रसिद्ध नाटक हैं। कथावस्तु, चरित्र चित्रण , कथोपकथन , नाटकीय सन्धि तथा रसपरिपाक की दृष्टि से कालिदास के नाटक अद्वितीय हैं। मालविकाग्निमित्रम् कालिदास का प्रथम नाटक है इसमें अग्निमित्र तथा मालविका की प्रणय कथा का पाँच अंको में वर्णन है। विक्रमोर्वशीयम् पाँच अंको का नाटक है। इसमें पुरूरवा तथा उर्वशी की प्रणय कथा वर्णित है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् कवि का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसमें सात अंक है। इसके सात अंको में दुष्यन्त तथा शकुन्तला के मिलन , वियोग तथा पुनर्मिलन का सुन्दर वर्णन है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् विश्व के सर्वोत्तम नाटकों में गिना जाता है।

3.5.3 शूद्रक

शूद्रक की एकमात्र रचना मृच्छकटिकम् है। इसमें कुल दस अंक है जिसमें सामान्य जनजीवन को आधार बनाकर सामाजिक पृष्ठभूमि का यथार्थ चित्रण किया गया है। इस नाटक के दो प्रमुख विभाग हैं – एक चारूदत्त और वसन्तसेना का प्रेम तथा दूसरा आर्यक की राज्य-प्राप्ति। यह एक चरित्र प्रधान प्रकरण है। इसमें कुल सत्ताइस प्रकार के पात्र है इनमें राजकर्मचारी, चोर, सिपाही, सन्यासी, दासी, वैश्य, गणिका आदि विविध पात्र हैं। यह नाटक तत्कालीन जन-जीवन की सम्पूर्ण झाँकी प्रस्तुत करने में समर्थ है।

3.5 .4 श्रीहर्ष

महाकवि श्रीहर्ष की तीन नाट्य कृतियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं – (1) रत्नावली (2) प्रियदर्शिका (3) नागानन्द। इन तीन नाट्यकृतियों में रत्नावली और प्रियदर्शिका नाटिकाएँ है। इन दोनों में साहित्य में प्रसिद्ध वत्सराज उदयन और वासवदत्ता की प्रेमकथा वर्णित है। इनकी तीसरी नाटयकृति नागानन्द में प्रसिद्ध ब्राह्मणकुमार जीमूतवाहन की करूणापूर्ण दान वृत्ति का गुणगान है। जीमूतवाहन नागों की

रक्षा के लिए गरूड़ को अपना शरीर तक समर्पित करते हैं।

3.5.5 भवभूति

भवभूति की प्रसिद्धि उनकी तीन रचनाओं के कारण ही रही है। उनकी उपलब्ध तीन रचनाओं में "महावीर चरित" और उत्तररामचरित" सात-सात अंकों के नाटक हैं और "मालती माधव" दस अंकों का एक प्रकरण। उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

मालती माधव

भवभूति की प्रथम नाट्यकृति मालती माधव है। यह 10 अंको का प्रकरण है। इसमें मालती और माधव के प्रेम की काल्पनिक कथा चित्रित की गई है।

महावीर चरित

यह सात अंकों का नाटक है। इसमें श्री रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक तक की घटनाओं का वर्णन है। मालती माधव की अपेक्षा यह नाटक अधिक संगठित है।

उत्तररामचरित

यह भवभूति का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसमें कवि ने अपनी कल्पना का प्रयोग करके अद्भुत सृष्टि की है। सात अंकों में निबद्ध इस नाटक में रामचन्द्र जी के उत्तररामचरित का वर्णन है। इसे महावीर चरित का उत्तरभाग ही समझा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, भट्टनारायण का वेणीसंहार, मुरारि का अनर्घराघव, जयदेव का प्रसन्नराघव आदि अन्य प्रसिद्ध नाटक है।

3.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि नाटक किसे कहते हैं। किस प्रकार इसका उद्भव एवं विकास हुआ।इसके उद्भव के सम्बन्ध में भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों का क्या मत है।साथ ही आपने यह भी जाना कि वैदिक काल से से लेकर अब तक नाटकों का विकास हुआ। किन्तु परिष्कृत नाटकों की रचना ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पूर्वाद्ध में मानी जाती है। संस्कृत नाटकों में महाकवि भास के नाटक अत्यधिक प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए हैं। परिष्कृत रूपक रचनाओं में भास के रूपकों को प्राचीन माना जाता है। भास के पश्चात् शूद्रक, कालिदास, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति, विशाखादत्त, मुरारि, शक्तिभद्र, दामोदर मिश्र, राजशेखर, दिंगनाग, कृष्ण मिश्र, जयदेव, वत्सराज आदि आते हैं। इनके उच्चकोटि के नाटकों ने संस्कृत साहित्य की सम्यक् श्री वृद्धि की है।

3.7 शब्दावली

श्रवण	सुनना	
उद्भव	उत्पत्ति	
नाट्य	नाटक दिवंगत	मृत (मरे हुए)
परिवर्तन	बदलाव	
स्पृहा	इच्छा	
विक्रय	बेचना	
शैलूष	अभिनेता (नट)	

प्रसादगुणोपेत	प्रसादगुण से युक्त
कतिपय	कुछ

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 — (1) आचार्य भरतमुनि (2) महर्षि वेदव्यास (3) डा0 पिशेल (4) भारतीय एवं पाश्चात्य मत

अभ्यास प्रश्न 2 — क (नहीं) ख (हाँ) ग (हाँ) घ (नहीं) ङ (हाँ)

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1• शुभंकर प्रणीत ' संगीत दामोदर'श्री शेषराज शर्मा रेग्मी द्वारा सम्पादित चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी।

2• नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

3• संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

4• दशरूपक, आचार्य धनंजय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

3.10 सहायक व उपयोगी पुस्तकें

1• संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

2• नाट्यशास्त्र, आचार्य भरतमुनि , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1• नाट्य साहित्य के उद्भव पर प्रकाश डालिये।

2 नाट्य साहित्य का विकास किस प्रकार हुआ लिखिए।

तृतीय सेमेस्टर/SEMESTER-III
खण्ड-2
काव्यशास्त्र की ऐतिहासिक परम्परा

इकाई.1 भरत, भामह दण्डी एवं रुद्रट जीवन वृत्त, समय,कृतित्व

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 भरत, भामह, दण्डी एवं रुद्रट का जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यास प्रश्नों उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 उपयोगी पुस्तकें

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

काव्यशास्त्र से सम्बन्धित द्वितीयखण्ड की यह पहली इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि काव्यशास्त्र का उद्भव किस प्रकार हुआ । भरतमुनि साहित्यशास्त्र के आचार्यों में सबसे प्राचीन आचार्य माने जाते हैं। भरत नाम से पाँच विभिन्न व्यक्तियों का उल्लेख संस्कृत साहित्य में पाया जाता है। इस परम्परा में सुबन्धु, बाण,दण्डी का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

भरत की स्थापित परम्परा को परवर्ती काल में भामह, दण्डी एवं रुद्रट आदि आचार्यों नें आगे बढाया।आचार्य दण्डी के ग्रन्थ का नाम काव्यादर्श है,यह एक प्रशस्तिपूर्ण ग्रन्थ है। भामह और दण्डी लगभग समकालीन हैं। भामह ने काव्यालंकार की रचना की है।रूद्रट रसवादी आचार्य हैं, इन्होनें काव्यालंकारसार नामक ग्रन्थ में काव्यशास्त्रीय तत्वों की विवेचना की है।

अतः प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भरत, भामह, दण्डी एवं रुद्रट के जीवन वृत्त, समय,एवं कृतित्त्व पर प्रकाश डाल सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

भरत, भामह दण्डी एवं रुद्रट से सम्बन्धित इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- भरत के व्यक्तित्व के विषय में बता सकेंगे।
- भामह की कृतियों के विषय में समझा सकेगें।
- दण्डी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को बता सकेगें।
- रुद्रट के समय एवं वैशिष्ट्य का वर्णन कर सकेगे।

1.3 भरत, भामह दण्डी एवं रुद्रट ,जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व

भरतमुनि का परिचय-

भरतमुनि साहित्यशास्त्र के आचार्यों में सबसे प्राचीन आचार्य हैं। भरत नाम से पाँच विभिन्न व्यक्तियों का उल्लेख संस्कृत साहित्य में पाया जाता है - 1. दशरथ के पुत्र भरत, 2. दुष्यन्त के पुत्र भरत, 3. मान्धाता के प्रपौत्र भरत, 4. जड़भरत और 5.'नाट्ययशास्त्र' के प्रवर्तक भरतमुनि। हमें यहाँ केवल अन्तिम अर्थात् नाट्यशास्त्र के रचनाकार भरतमुनि के विषय में ही बताना है, क्योंकि साहित्यशास्त्र के आचार्यों में उन्हीं की गणना की जाती है। अन्य भरतों का साहित्यशास्त्र के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

भरतमुनि के काल का निर्णय करना बड़ा कठिन कार्य है। कुछ विद्वान् भरत नाम को एक काल्पनिक नाम मानते हैं। डॉ0 मनमोहन घोष का 'नाट्यशास्त्र' का अंग्रेजी अनुवाद 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' बंगाल से सन् 1950 में प्रकाशित हुआ है। जिसमें उन्होंने भरतमुनि को एक काल्पनिक व्यक्ति ही माना है। इस मत के मानने वाले लोगों का यह विचार है कि प्रारम्भ में जो नटगण स्वाँग भरते थे वे स्वाँग भरने के कारण 'भरत' कहलाते थे। बाद में उनके आदि पुरुष के रूप में भरतमुनि की कल्पना कर ली गयी। परन्तु यह मत वास्तव में उचित नहीं है। भरतमुनि काल्पनिक व्यक्ति नहीं अपितु ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। सारे साहित्यशास्त्र में उनको 'नाट्यशास्त्र' के

प्रवर्तक रूप में स्मरण किया गया है। 'मत्स्यपुराण' के 24 वें अध्याय में 27-32 वें श्लोक तक 6 श्लोकों में भरतमुनि का उल्लेख अनेक बार किया गया है। उनमें यह कथा बतायी गयी है कि भरतमुनि ने देवलोक में 'लक्ष्मीस्वयंवर' नामक नाटक का अभिनय करवाया था। उसमें अप्सरा उर्वशी लक्ष्मी का अभिनय कर रही थी। देव सभा में इन्द्र के साथ राजा पुरूरवा भी उपस्थित थे। पुरूरवा के रूप को देखकर उर्वशी उस समय ऐसी मोहित हो गयी कि वह अपना अभिनय करना भूल गयी। इस पर भरतमुनि ने अप्रसन्न होकर पुरूरवा और उर्वशी को शाप दे दिया। महाकवि कालिदास ने भी इस घटना की ओर सङ्केत किया है और भरतमुनि के नाम का उल्लेख करते हुए लिखा है -

'मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रयः प्रयुक्तः।
ललिताभिनयं तमद्य भर्ता मरुतां द्रष्टुमनाः सलोकपालः।।'विक्रमोर्वशीय 2-18

भरत के 'नाट्यशास्त्र' में देवलोक में भरतमुनि के द्वारा किये जाने वाले अभिनय का वर्णन किया गया है। इसमें भरतमुनि के सौ पुत्रों की लम्बी सूची भी दी गयी है और साथ में अप्सराओं के नामों की सूची दी गयी है, जिनके द्वारा भरतमुनि ने अभिनय की योजना की थी। संस्कृत के सभी नाटकों की समाप्ति प्रायः 'भरवाक्य' के साथ होती है और अभिनवगुप्त आदि सभी प्राचीन लेखकों ने भरतमुनि को 'नाट्यशास्त्र' का प्रवर्तक माना है, इसलिए उनको कल्पित व्यक्ति कहना उचित नहीं है।

भरतमुनि के काल का निर्णय कर सकना यद्यपि बहुत कठिन है फिर भी जो लोग उनको ऐतिहासिक व्यक्ति मानते हैं वे उनका समय 500 विक्रम पूर्व से लेकर प्रथम शताब्दी तक के बीच में मानते हैं। अश्वघोष नामक बौद्ध दार्शनिक तथा कवि विक्रम की प्रथम शताब्दी में हुए हैं। उनका 'सारिपुत्रप्रकरण' नामक एक 'नाट्यशास्त्र' का प्रभाव दिखायी देता है। आलोचकों की सम्मति में उसके ऊपर भी भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' का प्रभाव दिखायी देता है। इसलिए भरतमुनि का काल उनसे पहिले अवश्य ही मानना होगा। अतएव कुछ विद्वान् लोक विक्रम पूर्व पञ्चम शताब्दी से लेकर विक्रम काल के बीच में कहीं भरतमुनि का समय मानते हैं।

भरतमुनि का एकमात्र ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' है। नाम से तो वह नाट्य के विषय का ही ग्रन्थ प्रतीत होता है परन्तु वस्तुतः वह समस्त कलाओं का विश्वकोष है। स्वयं भरतमुनि 'नाट्यशास्त्र' का परिचय देते हुए कहते हैं -

'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येस्मिन् यन्न दृश्यते।।'

जो उन्होंने नाट्य के विषय में कहा है वही उनके 'नाट्यशास्त्र' पर भी चरितार्थ होती है। उनका 'नाट्यशास्त्र' न केवल नाट्य का ही अपितु समस्त ललित एवं उपयोगी कलाओं का आकर ग्रन्थ है।

वर्तमान 'नाट्यशास्त्र' प्रायः 6,000 श्लोकों का ग्रन्थ है। इसलिए उसको 'षट्साहस्री संहिता' भी कहा जाता है। पर इसके पूर्व उसका 12,000 श्लोकों का भी कोई संस्करण रहा होगा

क्योंकि उसकी 'द्वादशासहस्री संहिता' का भी उल्लेख पाया जाता है। शारदातनय ने अपने 'भावप्रकाशन' ग्रन्थ में इन दोनों संस्करणों का उल्लेख किया है और उनमें से 'द्वादशसाहस्री संहिता' का रचयिता वृद्ध भरत को और 'षट्साहस्री संहिता' का रचयिता भरत को बतलाया है। उन्होंने लिखा है -

'एवं द्वारशसाहस्रैः श्लोकैरेकं तदर्धतः।
षड्भिः श्लोकसहस्रैर्यो नाट्यवेदस्य संग्रहः।।'

नाट्यशास्त्र का वर्तमान संस्करण 'षट्साहस्री' संस्करण है। इसमें कुल 36 अध्याय हैं। निर्णय सागर से प्रकाशित प्रथम संस्करण में 'नाट्यशास्त्र' के 37 अध्याय दिखलाये गये थे। परन्तु 'नाट्यशास्त्र' के प्राचीन टीकाकार अभिनव गुप्त ने उसमें केवल 36 अध्यायों का वर्णन करते हुए लिखा है -

'षट्त्रिंशकात्मकजगद्-गगनावभाससंविन्मरीचिचयचुम्बितबिम्बशोभम्।
षट्त्रिंशकं भरतसूत्रमिदं विवृण्वन् वन्दे शिवं ....।।'

भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' का सम्पादनसन् 1825 में विलसन ने कुछ संस्कृत नाटकों का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया था। उस समय 'नाट्यशास्त्र' की कोई प्रति सर्वसाधारण के लिए सुलभ न थी। विलसन महोदय को भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' का उल्लेख तो विभिन्न ग्रन्थों में मिला, परन्तु उसकी कोई प्रति उपलब्ध न हो सकी, इसलिए उस समय उन्होंने बड़े दुःख के साथ यह लिखा कि भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' तो सर्वदा के लिए लुप्त हो गया प्रतीत होता है। इसके चालीस वर्ष बाद सन् 1865 में फ्रेड्रिक हाल महोदय को 'नाट्यशास्त्र' की एक प्रति प्राप्त हुई। परन्तु वह अत्यन्त अशुद्ध थी इसलिए वे उसका सम्पूर्ण रूप से सम्पादन तथा प्रकाशन न कर सके। फिर भी उन्होंने उसके कुछ अध्यायों को अपने सम्पादित 'दशरूपक' के साथ प्रकाशित किया।

हाल महोदय के इस प्रकाशन से 'नाट्यशास्त्र' के बिलकुल लुप्त हो जाने की धारणा का निराकरण हो गया, इसलिए विद्वान् लोग हस्तलिखित ग्रन्थों के भण्डारों में इस 'नाट्यशास्त्र' की अन्य प्रतियों की खोज बड़ी तत्परता से करने लगे। सन् 1874 में हेमान नामक जर्मन विद्वान् ने 'नाट्यशास्त्र' की एक और नयी प्रति का पता लगाकर गौंटिगेन नगर की राजकीय विज्ञान-परिषद् की विवरण पुस्तक में 'नाट्यशास्त्र' का एक विस्तृत परिचय प्रकाशित किया। उसके बाद सन् 1880 में रैग्नो नामक फ्रांस के एक विद्वान् ने 'नाट्यशास्त्र' के 15वें तथा 16वें अध्यायों को प्रकाशित किया। उसके बाद सन् 1884 में उन्हीं रैग्नो महोदय ने 6 वें तथा 7वें अध्यायों को प्रकाशित किया।

रैग्नो महोदय के शिष्य ग्रौसे नामक दूसरे फ्रेंच विद्वान् ने अपने गुरु के कार्य को आगे बढ़ाते हुए सन् 1888 में नाट्यशास्त्र के संगीत विषयक 28वें अध्याय को सम्पादित करके प्रकाशित किया और उसके बाद भी 'नाट्यशास्त्र' के सम्पादन में अनवरत तत्पर रहे। अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी सन् 1898 में उन्होंने 'नाट्यशास्त्र' के प्रारम्भिक 14 अध्यायों का एक सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित किया।

ग्रौसे के इस संस्करण के प्रकाशित होने के पूर्व फ्रांस के प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् प्रो0 शिल्वाँ लेबी ने अपने भारतीय नाटक विषयक ग्रन्थ में भरत के 'नाट्यशास्त्र' के कुछ अध्यायों का विवेचन किया था, पर वह बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता था। इसी बीच में ग्रौसे के संस्करण से पहले हमारे भारत में भरत नाट्यशास्त्र का प्रथम संस्करण निर्णयसागर प्रेस, बम्बई की काव्यमाला सीरीज़ में प्रकाशित हुआ। इसका सम्पादन स्वर्गीय श्री पण्डित शिवदत्त जी तथा श्री काशीनाथ पाण्डुरङ्ग महोदय ने किया था।

इतना कार्य हो जाने पर भी 'नाट्यशास्त्र' का समझना और उसकी समुचित व्याख्या कर सकना विद्वानों के लिए एक समस्या ही बनी हुई थी। क्योंकि ये संस्करण पर्याप्त शुद्ध न थे और न उनकी कोई टीका आदि अब तक मिल सकी थी। सर्वमान 20वीं शताब्दी के आरम्भ में डॉ0 सुशील कुमार डे महोदय ने 'नाट्यशास्त्र' की 'अभिनवभारती' नामक प्राचीन टीका की एक प्रति खोजकर निकाली। इस टीका के रचयिता कश्मीर के प्रसिद्ध विद्वान् श्री अभिनव गुप्तपादाचार्य हैं। बाद को मद्रास के प्रसिद्ध विद्वान् भी रामकृष्ण कवि महोदय ने 'अभिनवभारती' टीका और मूल 'नाट्यशास्त्र' को सम्पादित करने का भार उठाया और सन् 1926 में उसके सात अध्यायों का प्रथम भाग तथा सन् 1934 में द्वितीय भाग 18 अध्याय तक का प्रकाशित किया। इसका तृतीय भाग भी अब प्रकाशित हुआ है और चतुर्थ भाग भी शीघ्र प्रकाशित होने की आशा है।

'अभिनवभारती' के प्रकाशन से यह आशा हुई थी कि 'नाट्यशास्त्र' का रहस्य स्पष्ट हो जायेगाऔर बहुत-कुछ अंशों में ऐसा हुआ भी है। परन्तु दुःख की बात यह है कि 'अभिनवभारती' की जो प्रतियाँ उपलब्ध हुईं वे सब अत्यन्त दूषित थीं। उनका पाठ अत्यन्त अशुद्ध था। सम्पादक महोदय को जिस प्रकार का पाठ हस्तलिखित प्रतियों में मिला उसको उन्होंने उसी रूप में छाप दिया था। परन्तु वह पाठ इतना अधिक अशुद्ध और असङ्गत है कि उससे ग्रन्थ का अभिप्राय समझ सकना नितान्त असम्भव है।

उसके सम्बन्ध में विद्वानों का कहना तो यह है कि 'अभिनवभारती' का पाठ इतना अधिक अशुद्ध है कि यदि स्वयं अभिनवगुप्ताचार्य भी स्वर्ग से उतरकर आ जायें तो वर्तमान पाठ को देखकर वे भी अपने अभिप्राय को नहीं समझ सकते।

इस प्रकार की अशुद्धियों के दो कारण हुए हैं। एक तो यह कि सम्पादक महोदय को जो पाण्डुलिपि प्राप्त हुई थी उसे अनेक स्थानों पर कीड़ों ने खा डाला था। इसलिए उन स्थानों पर क्या पाठ था यह पढ़ा नहीं जा सकता। इसी कारण से मुद्रित संस्करण में अनेक जगह पाठ लुप्त-सा दिखायी देता है। दूसरा कारण यह है कि पाण्डुलिपि के पृष्ठों पर संख्या पड़ी हुई नहीं थी। इसलिए कहीं-कहीं पर जहाँ कि पृष्ठों को किसी ने इधर-उधर करके रख दिया था, वे वहीं छाप दिये गये। इस प्रकार उनके मुद्रण में भी भूल हो गयी है, अर्थात् पाठों का पौर्वापर्य बिगड़ गया है। ऐसी अवस्था में किसी पाठ का अर्थ समझ में आ ही कैसे सकता है।

भामह का परिचय भरतमुनि के बाद अलङ्कार शास्त्र के दूसरे आचार्य, का ग्रन्थ है,जिनका नाम भामह है। भामह का समय विद्वानों ने षष्ठ शतक का पूर्वार्द्ध माना है। इसका आधार यह है कि

उन्होंने अपने 'काव्यालङ्कार' के पञ्चम परिच्छेद में न्याय निर्णय का वर्णन करते हुए बौद्ध आचार्य दिङ्नाग के 'प्रत्यक्ष कल्पनापोढम्' इस प्रत्यक्ष लक्षण को उद्धृत किया है। दिङ्नाग का समय 500 ई0 के लगभग माना जाता है। दिङ्नाग के बाद उनके व्याख्याकार आचार्य धर्मकीर्ति का समय 620 ई0 के लगभग माना जाता है। धर्मकीर्ति ने दिङ्नाग के प्रत्यक्ष-लक्षण में थोड़ा सा संशोधन कर 'कल्पनापोढम भ्रान्तं निर्विकल्पकम्' यह प्रत्यक्ष लक्षण किया है। इसमें 'अभ्रान्तम्' पद जोड़ दिया गया है। किन्तु भामह के ग्रन्थ में दिये हुए प्रत्यक्ष लक्षण में 'अभ्रान्तम्' पद नहीं है। इससे अनुमान होता है कि भामह दिङ्नाग के बाद और धर्मकीर्ति के पहिले अर्थात् 500 तथा 620 ई0 के बीच में हुए हैं।

आचार्य भामह और महाकवि कालिदास

भामह के काल का निर्णय करना कठिन काम है। उनके ग्रन्थ में अन्य लोगों के लेखों के कुछ सङ्केत पाये जाते हैं जिनके कारण विद्वानों में उनके पौर्वापर्य के निर्णय में विभिन्न मत पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए भामह के 'काव्यालङ्कार' में ही -

'अयुक्तिमद् यथा दूता जलभृन्मारुतेन्दवः।
तथा भ्रमरहारीतचक्रवाकशुकादयः।। 1-42
अवाचोव्यक्तवाचश्च दूरदेशविचारिणः।
कथं दूत्यं प्रपद्येरन् इति युक्त्या न युज्यते।। 1-43
यदि चोत्कण्ठया यत् तदुन्मत्त इव भाषते।
तथा भवतु भूम्नेदं सुमेधोभिः प्रयुज्यते।।' 1-44

इन कारिकाओं में 'अयुक्तिमत्' दोष की विवेचना करते हुए साधारण अवस्था में मेघ आदि को दूत बनाने के वर्णन को 'अयुक्तिमत्' दोष कहा है। क्योंकि दूर देश में विचरण करने वाले और वाणी रहित अथवा अव्यक्त वाणी वाले होने से वे दौत्य कार्य कर ही नहीं सकते। इसलिए उनको दूत बनाना 'अयुक्तिमत्' दोष माना जाता है। इसके साथ उन्होंने यह भी लिखा है कि यह तो हो सकता है कि उन्मत्तावस्था में उनको दूत रूप में प्रयुक्त किया जा सके, क्योंकि बड़े-बड़े विद्वान् इस रूप में उनका प्रयोग करते हैं।

यह सब जो वर्णन भामह के ग्रन्थ में मिलता है इससे प्रतीत होता है कि इस आलोचना के समय उनके सामने कालिदास का 'मेघदूत' ग्रन्थ विद्यमान था। और कालिदास जैसे महाकवि के द्वारा उस मेघ को दूत बनाये जाने का वर्णन देखकर ही उन्होंने 'सुमेधोभिः प्रयुज्यते' लिखा है। इसलिए भामह कालिदास के उत्तरवर्ती हैं। इसके विपरीत डॉ0 टी0 गणपति शास्त्री आदि कुछ विद्वानों का मत है कि भामह कालिदास से बहुत पूर्ववर्ती रहे होंगे, क्योंकि भामह ने मेधावी, राम शर्मा, अश्मकवंश, रत्नाहरण आदि अत्यन्त अप्रसिद्ध ग्रन्थकारों के नामों का तो स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है किन्तु कालिदास जैसे महाकवि का नामतः कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाकवि कालिदास का नाम उनको विदित नहीं था। यह जो मेघ को

दूत बनाने आदि की चर्चा की है वह सामान्य रूप से ही की है, उसका कालिदास के 'मेघदूत' से कोई सम्बन्ध नहीं है।

भामह और माघ

माघ कवि विरचित 'शिशुपालवध' महाकाव्य में द्वितीय सर्ग में निम्नलिखित श्लोक आता है -

'नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।।'--माघ 2-28

इनमें सत्कवि, शब्द और अर्थ दोनों की अपेक्षा रखता है, उसी प्रकार राजनीतिज्ञ भाग्य और पौरुष दोनों की अपेक्षा रखता है। इस युक्ति से काव्य के साथ शब्द और अर्थ दोनों का जो सम्बन्ध सूचित किया गया है इस आधार पर कुछ विद्वानों का विचार है कि माघ की यह उपमा भामह के काव्य-लक्षण के आधार पर स्थित होती है। भामह ने 'शब्दार्थो सहितौ काव्यम्' यह काव्य का लक्षण किया है। इन विद्वानों का विचार है कि माघ कवि की यह उपमा भामह के काव्य लक्षण के आधार पर बनी है। इसलिए भामह माघ के पूर्ववर्ती हैं। यह प्रो0 पाठक का मत है। इसके विपरीत डॉ0 जे0 नाबुल का कहना है कि यह युक्ति बिलकुल निस्सार है। यदि इसी युक्ति से काम लिया जाय तो फिर कालिदास के 'रघुवंश' में जो 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ' लिखा गया है वह भी कालिदास ने भामह के काव्य लक्षण के आधार पर ही लिखा होगा। परन्तु यह सब बात ठीक नहीं।

भामह और भास

इसी प्रकार की कल्पनाओं के आधार पर कुछ विद्वान् भामह और भास का भी सम्बन्ध जोड़ने का यत्न करते हैं। भामह ने 'काव्यालङ्कार' के चतुर्थ परिच्छेद में निम्नाङ्कित श्लोक लिखे हैं -

'विजिगीषुमुपन्यस्य वत्सेशं वृद्धदर्शनम्।
तस्यैव कृतिनः पश्चादभ्यधाच्चारशून्यताम् ।।
अन्तर्योधशताकीर्णं सालङ्कायननेतृकम्।
तथाविधं गजच्छù नाज्ञासीत् स स्वभूगतम् ।।
यदि वोपेक्षितं तस्य सचिवैः स्वार्थसिद्धये।
अहो नु मन्दिमा तेषां भक्तिर्वा नास्ति भर्तरि ।।

इन श्लोकों में वत्सराज उदयन की कथा की चर्चा की गयी है। गणपति शास्त्री का कथन है कि भामह ने यह चर्चा भास कवि के 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' नाटक के आधार पर की है। इसकी सम्पुष्टि में उन्होंने एक युक्ति यह भी दी है कि इसी प्रसङ्ग में भामह ने अगले 43 वें श्लोक में लिखा है -

'हतोनेन मम भ्राता मम पुत्रः पिता मम।
मातुलो भागिनेयश्च रुषा संरब्धचेतसा।।'

इसी से मिलता-जुलता निम्नलिखित प्राकृत गद्य भाग 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में आया है-

'मम भादा हदो अणेण मम पिदा अणेण मम सुदो।'

भामह के उपर्युक्त श्लोकों और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' नाटिका की कथा तथा उक्त 'हतो येन मम भ्राता' आदि वाक्य की समानता के आधार पर टी0 गणपति शास्त्री ने यह परिणाम निकाला है कि भामह भास के बाद हुए हैं, किन्तु दूसरे विद्वानों की सम्मति में यह ठीक नहीं है। वत्सराज उदयन की कथा 'वृहत्कथा' में मूल रूप से आती है। अन्यत्र जहाँ कहीं भी उसका उल्लेख किया गया है वह सब 'गुणाढ्य' की 'बृहत्कथा' से ही लिया गया है। 'बृहत्कथामञ्जरी' और 'कथासरित्सागर' 'बृहत्कथा' के संक्षिप्त रूप हैं। उनमें भी वत्सराज उदयन की कथा आती है। भामह ने जो वत्सराज उदयन की कथा का यह उल्लेख किया है वह भास के 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' के आधार पर नहीं, अपितु 'बृहत्कथामञ्जरी' या 'कथासरित्सागर' के आधार पर ही किया है। अतः इस युक्ति के आधार पर भामह को भास का उत्तरवर्ती सिद्ध करने का प्रयत्न ठीक नहीं है।

भामह और भट्टि

महाकवि भट्टि भी संस्कृत साहित्य के महान् कवि हुए हैं। उनकी कल्पना बड़ी विचित्र है। उन्होंने 'रावणवध' नामक एक महाकाव्य लिखा है। जिस प्रकार माघ ने 'शिशुपाल वध' काव्य लिखा है, उसी प्रकार इनका 'रावण वध' महाकाव्य है। किन्तु माघ के काव्य का नाम कवि के नाम से 'माघ' के रूप में ही प्रसिद्ध हो गया है। 'शिशुपाल वध' नाम उसकी अपेक्षा कम प्रचलित है। उसी प्रकार भट्टि कवि के 'रावणवध' महाकाव्य का मुख्य नाम गौण हो गया है। उसके स्थान पर उसे अब 'भट्टिकाव्य' ही का जाता है। इस 'भट्टिकाव्य' की रचना काठियावाड़ के 'बलभी' राज्य, जिसे अब 'बल' कहतहे हैं, के राजा धरसेन के समय में हुई है। 'भट्टिकाव्य' के अन्त में कवि ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है -

'काव्यमिदं विहितं मया बलभ्यां श्रीधरसेननरेन्द्रपालितायाम्।
कीर्तिरतो भवतान्नृपस्य तस्य प्रेयकरः क्षितिपो यतः प्रजानाम्।।

'भट्टिकाव्य' में रचनाकाल का इतना परिचय होने पर भी उसका समय कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि काठियावाड़ के इतिहास के अनुसार 'बलभी' में धरसेन नाम के चार राजा राज्य कर चुके हैं। इनमें से किस 'धरसेन' के समय में 'भट्टिकाव्य' की रचना हुई यह नहीं कहा जा सकता। प्रो0 मजूमदार ने सन् 473 ई0 के मन्दसोर सूर्य मन्दिर के लेख में कहे हुए वत्सभट्टि को ही 'भट्टिकाव्य' का रचयिता माना है। इसके समर्थन के लिए उनकी यह युक्ति है कि मन्दसोर के शिलालेख के श्लोक 'भट्टिकाव्य' के शरद्वर्णन के श्लोकों से बहुत मिलते-जुलते हैं। इसके विपरीत प्रो0 कीथ ने इस मत का उग्रता के साथ खण्डन किया है। इसी प्रकार प्रो0 काणे, प्रो0 पाठक आदि अन्य विद्वानों का भी 'भट्टिकाव्य' के रचनाकाल के विषय में मतभेद पाया जाता है। इसलिए इसके काल का यथार्थ निर्णय बड़ा कठिन काम है।

भामह ने 'काव्यालङ्कार' के द्वितीय परिच्छेद में निम्नलिखित श्लोक दिया है -

काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत्।
उत्सवः सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः।।' -- 2-30

इसी श्लोक का भावानुवाद 'भट्टिकाव्य' के श्लोक में निम्नलिखित प्रकार किया गया है-

'व्याख्यागम्यमिदं काव्यमुत्सवः सुधियामलम्।

हता दुर्मेधसश्चास्मिन् विद्वत्प्रियतया मया।।'' 22-34

भामह और भट्टि के इन दोनों श्लोकों में इतना अधिक साम्य है कि इन दोनों में से किसी एक ने दूसरे के श्लोक का भावानुवाद किया है यह बात बिलकुल निश्चित ही है। किन्तु भामह ने भट्टि का अनुवाद किया है अथवा भट्टि ने भामह का यह बात तब तक नहीं कही जा सकती, जब तक उनके काल का ठीक निर्णय नहीं हो जाता है। इसीलिए विद्वानों में इस विषय में मतभेद पाया जाता है।

भामह और और दण्डी

भास और भट्टि के समान दण्डी के साथ भी भामह की अनेक उक्तियों का असाधारण सादृश्य पाया जाता है। अनेक उक्तियाँ तो ऐसी हैं जो भामह के 'काव्यालङ्कार' तथा दण्डी के 'काव्यादर्श' में बिलकुल एक ही रूप में पायी जाती हैं। उदाहरण के लिए हम कुछ उक्तियाँ नीचे उद्धृत करते हैं जो इन दोनों ग्रन्थों में शब्दशः समान रूप में उपलब्ध होती हैं -

1. **'सर्गबन्धो महाकाव्यम्।' भामह 1-19। काव्यादर्श 1-14।**
2. **'मन्त्रिदूतप्रयाणाजिनायकाभ्युदयैरपि।' भामह 1-20। काव्यादर्श 1-17।**
3. **'कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयादयः।' भामह 1-27। काव्यादर्श 1-29।**
4. **'अद्य या मम गोविन्द जाता त्वयि गृहागते।**
   कालेनैषा भवेत्प्रीतिस्तवैवागमनात् पुनः।।' भामह 3-5। काव्यादर्श 2-276।
5. **'तद् भाविकमिति प्राहुः प्रबन्धविषयं गुणम्।' भामह 3-53। काव्यादर्श 2-364।**
6. **'अपार्थं व्यर्थमेकार्थं ..... विरोधि च।' भामह 4-1, 2। काव्यादर्श 3-125, 126।**
7. **'समुदायार्थशून्यं यत् तदपार्थकमिष्यते।' भामह 4-8। काव्यादर्श 3-128।**
8. **'गतोस्तमर्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः।' भामह 2-87। काव्यादर्श 2-244।**
9. **आक्षेपोर्थान्तरन्यासो व्यतिरेको विभावना।' भामह 2-66। काव्यादर्श 2-4।**
10. **'प्रयो रसवदूर्जस्वि पर्यायाक्तं समाहितम्।' भामह 3-1। काव्यादर्श 2-5।**

ये दस उदाहरण ऐसे हैं जो भामह के 'काव्यालङ्कार' और दण्डी के 'काव्यादर्श' में न केवल अर्थतः अपितु शब्दतः भी प्रायः एक रूप में ही उपलब्ध होते हैं। कहीं बिलकुल नाम मात्र का भेद पाया जाता है; जैसे, द्वितीय उदाहरण के अन्त में 'अपि' शब्द के स्थान पर भामह ने 'च यत्' शब्द का प्रयोग किया है। इसी प्रकार तीसरे उदाहरण के अन्त में 'उदयादयः' के स्थान पर भामह में 'उदयान्विताः' प्रयोग पाया जाता है। इन नाम मात्र के भेदों के अतिरिक्त ये दसों स्थल भामह और दण्डी में बिलकुल एक-से पाये जाते हैं।

कुछ स्थल मिलते हैं जिनमें एक-दूसरे के मत की आलोचना की गयी प्राप्त होती है; जैसे, भामह ने काव्य के -

'सर्गबन्धोभिनेयार्थं तथैवाख्यायिकाकथे।

अनिबद्धं च काव्यादि तत्पुनः पञ्चधोच्यते।।' --1-18

(1) सर्गबन्ध अर्थात् महाकाव्य, (2) अभिनेयार्थ अर्थात् नाटक, (3) आख्यायिका, (4) कथा तथा (5) अनिबद्ध अर्थात् मुक्तक ये काव्य के पाँच भेद किये हैं। इनमें आख्यायिका तथा कथा को काव्य का अलग-अलग भेद माना है। किन्तु दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में इसका खण्डन करते हुए लिखा है -

'तत् कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञा द्वयाङ्किता।' -- 1-28

भामह ने अपने पूर्ववर्ती आचार्य मेधावी के आधार पर उपमा के सात दोष बतलाये हैं। किन्तु दण्डी ने इस मत की आलोचना करते हुए लिखा है -

'न लिंगवचने भिन्न न हीनाधिकतापि वा।
उपमादूषणायालं यत्रोद्वेगो न धीमताम्।। -- 2-51

भामह और दण्डी के ग्रन्थों में इस प्रकार के सारूप्य तथा वैरूप्य के उदाहरण बहुत अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इससे प्रतीत होता है कि इनमें से किसी एक ने दूसरे के आधार पर ही अपने ग्रन्थ में उन प्रसङ्गों का उल्लेख किया है। इसी आधार पर भामह और दण्डी के पौर्वापर्य के विषय में विद्वानों में बड़ा तीव्र वाद-विवाद बहुत दिनों तक चलता रहा। सबसे पहले एम0टी0 नरसिंह अयङ्गर ने सन् 1905 में 'जरनल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' (पृ0 355) में इस प्रश्न को उठाया और दण्डी को भामह का पूर्ववर्ती सिद्ध करने का यत्न किया। परन्तु इनके मत का बड़ा विरोध हुआ। डॉ0 त्रिवेदी ने 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' की भूमिका में, प्रो0 रङ्गाचार्य ने 'काव्यादर्श' की भूमिका में, गणपति शास्त्री ने 'स्वप्नवासवदत्ता' की भूमिका में और प्रो0 पाठक ने 'कविराजमार्ग' की भूमिका में दण्डी को भामह के पूर्व ठहराने वाले नरसिंह आयङ्ग के मत का विस्तार के साथ खण्डन किया। अपने देश में ही नहीं, डॉ0 जैकोबी ने भी (जेड0एस0एम0जी0, पृ0 134-139 पर) दण्डी की भामह का पूर्ववर्ती बतलाने वाले श्री नरसिंह आयङ्गर के मत का खण्डन किया। इन सब विवादों का अध्ययन करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अधिकांश विद्वान् भामह को ही दण्डी का पूर्ववर्ती मानने के पक्ष में हैं।

भामह को दण्डी का पूर्ववर्ती मानने के विषय में एक युक्ति और है। दण्डी के 'अवन्तिसुन्दरीकथा' नामक एक नवीन ग्रन्थ का परिचय अभी हाल में प्राप्त हुआ है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में जो श्लोक दिये गये हैं उनमें -

'भिन्नस्तीक्ष्णमुखेनापि चित्रं बाणेन निर्व्यथः।
व्याहारेषु जहौ लीलां न मयूरः ....।।'

आदि श्लोक में महाकवि बाणभट्ट तथा मयूरभट्ट का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त दण्डी ने अपने को महाकवि भारवि का प्रपौत्र घोषित किया है। इससे स्पष्ट है कि दण्डी महाकवि बाण के बाद हुए हैं। बाणभट्ट के 'हर्षचरित' के आधार पर यह निश्चित बात है कि बाणभट्ट हर्षवर्धन की राजसभा में थे। हर्षवर्धन राज्यकाल 606-648 ई0 तक माना जाता है। इसलिए बाणभट्ट का काल भी सप्तम शताब्दी का मध्य भाग है। उस दशा में दण्डी का समय आठवीं शताब्दी में होना चाहिए।

दण्डी बाणभट्ट के बाद हुए हैं और भामह बाणभट्ट के पहिले हुए हैं इसलिए भामह दण्डी के निश्चय ही पूर्ववर्ती हैं। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

भामह बाणभट्ट से पहिले हुए हैं इस बात की सिद्धि आनन्दवर्धनाचार्य के 'ध्वन्यालोक' ग्रन्थ के आधार पर होती है। 'ध्वन्यालोक' के चतुर्थ उद्योत में -

'दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्था काव्ये रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः।।'

यह कारिका आयी है। इसका अभिप्राय यह है कि काव्य में पूर्व कवियों द्वारा वर्णित पुराने अर्थों में भी कवि रस का समावेश कर के उनमें नवीनता ला सकता है और वे पुराने अर्थ भी रस के सम्पर्क से ऐसे ही नवीन प्रतीत होने लगते हैं जैसे वसन्त में पुराने वृक्ष भी नवीन और आकर्षक हो जाते हैं। इसी का उदाहरण देते हुए आनन्दवर्धन ने लिखा है -

'तथा हि विवक्षितान्यपरवाच्यस्यैव शब्दशक्त्युॅवानुरणनरूपव्यङ्ग्iप्रकारसमाश्रयेण नवत्वं। यथा - धरणीधारणायाधुना त्वं शेषः इत्यादौ --

शेषो हिमगिरिस्त्वं च महान्तो गुरवः स्थिराः। ……… इत्यादिषु सत्स्वपि।'

अभिप्राय यह है कि 'शेषो हिमगिरिः' इत्यादि पूर्ववर्ती श्लोक में वर्णित पुराने अर्थ को ही 'अधुना धरणीधारणाय त्वं शेषः' इस नवीन वाक्य में कहा गया है, किन्तु उसमें शब्द-शक्त्युत्थ अलङ्कार ध्वनि के सन्निवेश से विशेष चमत्कार आ जाने से उसमें नवीनता प्रतीत होने लगी है। इसी प्रकार पूर्व कवियों द्वारा वर्णित पुराने अर्थों में नवीन चमत्कार का आधान कर के उनमें नूतनता उत्पन्न की जा सकती है। इस आशय से आनन्दवर्धनाचार्य ने यह उदाहरण दिया है।इस उदाहरण में जो दो वाक्य उद्धृत किये गये हैं वे विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

आनन्दवर्धनाचार्य ने 'शेषो हिमगिरिस्त्वं च' इत्यादि श्लोक को पुराना वर्णन माना है और उसी अर्थ को नवीन रूप में प्रस्तुत करने वाला 'धरणीधारणायाधुना त्वं शेषः' इस वाक्य को नवीन वाक्य माना है। आनन्दवर्धनाचार्य जिस 'शेषो हिमगिरिस्त्वं च' आदि को पुराना वाक्य कहते हैं वह भामह के 'काव्यालङ्कार' में आया हुआ तीसरे परिच्छेद का 27वाँ श्लोक है। और 'धरणीधारणायाधुना त्वं शेषः' रूप जिस वाक्य को वे नवीन वाक्य कहते हैं वह बाणभट्ट के 'हर्षचरित' के चतुर्थ उच्छवास के 15वें अनुच्छेद में आया है। अर्थात् बाणभट्ट का यह वाक्य भामह के वाक्य की अपेक्षा नवीन है। इसका अर्थ हुआ कि भामह बाणभट्ट से बहुत पहिले हुए हैं और दण्डी बाणभट्ट के बाद में हुए हैं। इसलिए भामह दण्डी के पूर्ववर्ती हैं इसमें कोई सन्देह रह ही नहीं जाता है।

भामह का धर्म

जिस प्रकार भामह के काल के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद पाया जाता है, उसी प्रकार उनके धर्म के विषय में भी पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। भामह के 'काव्यालङ्कार' के प्रथम श्लोक में-

'प्रणम्य सार्वसर्वज्ञं मनोवाक्कायकर्मभिः।

काव्यालङ्कार इत्येष यथाबुद्धि विधास्यते।।' -- का0 1-1

'सार्वसर्वज्ञ' को नमस्कार किया गया है।'' 'सर्वज्ञः सुगतो बुद्धः' इत्यादि 'अमरकोश' के आधार पर कुछ लोगों ने 'सर्वज्ञ' पद को बुद्ध का नाम मानकर यह अर्थ लगा लिया है कि इसमें बुद्ध को नमस्कार किया गया है इसलिए भामह बौद्ध आचार्य जान पड़ते हैं। परन्तु यह कोई युक्ति नहीं है। 'कृशातुरेताः सर्वज्ञो धूर्जटिर्नीललतोहितः' इत्यादि 'अमरकोश' के अनुसार 'सर्वज्ञ' पद शिव के नामों में भी पढ़ा गया है। तब उससे शिव अर्थ न लेकर बुद्ध अर्थ ही कैसे लिया जा सकता है ?उसके साथ में 'सार्व' पद और है। उसका अर्थ सबके लिए हितकारी है। वह जैसे बुद्ध के साथ जुड़ सकता है वैसे ही शिव के साथ भी जुड़ सकता है। इसलिए इस पद के आधार पर भामह को बौद्ध नहीं माना जा सकता। इसके विपरीत उनके ग्रन्थ के भीतर वैदिक प्रक्रियाओं, वैदिक कथाओं का विशेष रूप में उल्लेख पाया जाता है, बौद्ध कथाओं या बौद्ध प्रक्रियाओं आदि का उल्लेख बिलकुल नहीं पाया जाता है। इसलिए उनको बौद्ध नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार कथाओं आदि के उदाहरण रूप में 'काव्यालङ्कार' ग्रन्थ के निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये जा सकते हैं जिनसे भामह के वैदिक धर्म के प्रति अनुरक्ति की ही सूचना मिलती है -

'भूभृतां पीतसोमानां न्याय्ये वर्त्मनि तिष्ठताम्।
अलङ्करिष्णुना वंशं गुरौ सति जिगीषुणा।। 4-48
युगादौ भगवान् ब्रह्म विनिर्मित्सुरिव प्रजाः।। 2-55
समग्रगगनायाममानदण्डो रथाङ्गिणः।
पादो जयति सिद्धस्त्रीमुखेन्दुनवदर्पणः।। 3-36
कान्ते इन्दुशिरोरत्ने आदधाने उदंशुनी।
पातां वः शम्भु-शर्वाण्याविति प्राहुर्विसन्ध्यदः।। 4-27
विदधानौ किरीटेन्दू श्यामाभ्रहिमसच्छवी।
रथाङ्गशूले बिभ्राणौ पातां वः शम्भुशार्ङ्गिणौ।। 4-21
उदात्तशक्तिमान् रामो गुरुवाक्यानुरोधकः।
विहायोपनतं राज्यं यथा वनमुपागमत्।।3-11
'भरतस्त्वं दिलीपस्त्वं त्वमेवैलः पुरूरवाः।
त्वमेव वीर प्रद्युम्नस्त्वमेव नरवाहनः।।' 5-56

इत्यादि श्लोकों में शिव, विष्णु, पार्वती, ब्रह्मा आदि देवताओं का वर्णन और सोमपान आदि याज्ञिक क्रियाओं का उल्लेख वैदिक धर्म के प्रति भामह का स्पष्ट रूप से अनुराग सूचित करता है। रामचन्द्र, भरत, दिलीप, प्रद्युम्न और पुरूरवा का उल्लेख भी वैदिक धर्म के प्रति उनके अगाध प्रेम को ही सूचित करता है। इसमें कहीं भी कोई ऐसा तत्त्व नहीं है जिससे भामह को बौद्ध मानने का सङ्केत मिल सकता हो। अतएव भामह को बौद्ध सिद्ध करने का प्रयास असङ्गत है। अपने वंश परिचय के रूप में केवल एक पंक्ति भामह के ग्रन्थ के अन्तिम भाग में पायी जाती है। उसमें उन्होंने अपने पिता का नाम 'रक्रिलगोमिन' बतलाया है -

अवलोक्य मतानि सत्कवीनामवगम्य स्वधिया च काव्यलक्ष्यम्।

सुजनावगमाय भामहेन ग्रथितं रक्रिलगोमिनसूनुनेदम्।।'

इस श्लोक में ग्रन्थकार ने अपना नाम 'भामह' और अपने पिता का नाम 'रक्रिलगोमिन' बतलाया है। इसके अतिरिक्त इनके जीवन का और कोई परिचय इनके ग्रन्थ में नहीं मिलता है।

भामह के ग्रन्थ

भामह का आज हमें केवल 'काव्यालङ्कार' ही एकमात्र ग्रन्थ उपलब्ध होता है। किन्तु साहित्यशास्त्र के ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि उन्होंने इस 'काव्यालङ्कार' के अतिरिक्त छन्दः-शास्त्र और अलङ्कारशास्त्र के विषय में कुछ और ग्रन्थों की भी रचना की थी, किन्तु दुर्भाग्यवश वे ग्रन्थ्श अब तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं। उन ग्रन्थों के उद्धरण भामह के नाम से विविध ग्रन्थों में पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए, 'अभिज्ञानशाकुन्तल' की टीका में राघव भट्ट ने-

'क्षेमं सर्वगुरुर्दत्ते मगणो भूमिदैवतः।' इति भामहोक्तेः

(अभि0शा0, टीका नि0सा0, पृ0 4) लिखकर भामह के किसी छन्दःशास्त्र विषयक ग्रन्थ से उसके उद्धृत किये जाने की सूचना दी है। इसी टीका में दूसरे स्थान (पृ0 10) पर राघव भट्ट ने उनके किसी अलङ्कार विषयक ग्रन्थ से निम्नलिखित वाक्य उद्धृत किया है -

'तल्लक्षणमुक्तं भामहेन -

पर्यायोक्तं प्रकारेण यदन्येनाभिधीयते।

वाच्य-वाचकशक्तिभ्यां शून्येनावगमात्मना।। इति।

उदाहृतं च हयग्रीववधस्थं पद्यं -

यं प्रेक्ष्य विररूढापि निवासप्रीतिरुज्झिता।

मदेनैरावणमुखे मानेन हृदये हरेः।।'

पर्यायोक्त अलङ्कार के जिस लाक्षण और उदाहरण की राघव भट्ट ने यहाँ भामह के नाम से उद्धृत किया है, उन दोनों में से कोई भी भामह के वर्तमान 'काव्याङ्कार' में नहीं पाया जाता है। वर्तमान 'काव्यालङ्कार' में भामह के अनुसार पर्यायोक्त अलङ्कार के लक्षण और उदाहरण निम्नलिखित प्रकार दिये गये हैं -

'पर्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते।

उवाच रत्नाहरणे चैद्यं शार्ङ्गधनुर्यथा।।' -का0 3-8

लक्षण का पूर्वार्द्ध भाग तो थोड़े से अन्तर से भामह के लक्षण से मिल जाता है किन्तु उत्तरार्द्ध भाग का उल्लेख वर्तमान लक्षण में नहीं पाया जाता है और हयग्रीववधस्थ उदाहरण तो यहाँ बिलकुल ही नहीं पाया जाता है। उद्भट के 'काव्यालङ्कार' में पर्यायोक्त का यह लक्षण कुछ अन्तर से मिल जाता है और हयग्रीववधस्थ जिस श्लोक को उदाहरण रूप में प्रस्तुत किये जाने की चर्चा राघव भट्ट ने की है वह उदाहरण 'काव्यप्रकाश' में पाया जाता है।

ऐसा हो सकता है कि राघव भट्ट के पास भामह के 'काव्यालङ्कार' की जो प्रति रही हो उसमें पर्यायोक्त का लक्षण इसी रूप में दिया गया हो जिस रूप में उन्होंने उद्धृत किया है और

हयग्रीववधस्थ श्लोक भी उदाहरण रूप में दिया गया है, किन्तु दूसरी किसी प्रति में जिसके आधार परवर्तमान काव्यालङ्कार का सम्पादन किया गया है, ये दोनों भाग लिखने से रह गये हों। लक्षण के विषय में तो इतना ही भेद है कि राघव भट्ट ने जो लक्षण उद्धृत किया है वह पूरा एक श्लोक है, किन्तु वर्तमान 'काव्यालङ्कार' में दिया हुआ लक्षण आधे श्लोक में ही आ गया है। वर्तमान 'काव्यालङ्कार' का लक्षण अपूर्ण सा भी जान पड़ता है। राघव भट्ट ने जो लक्षण दिया है वह पूर्ण लक्षण है। इसलिए ऐसा अनुमान होता है कि वर्तमान 'काव्यालङ्कार' की पाण्डुलिपि में लक्षण की एक पंक्ति लिखने से छूट गयी है। इसी प्रकार पर्यायोक्त के अनेक उदाहरण 'काव्यालङ्कार' में पाये जाते हैं। सम्भव है इनके साथ हयग्रीववधस्थ एक और भी उदाहरण रहा हो। परन्तु यह बात तभी सम्भव हो सकती है जब 'हयग्रीववध' के प्रणेता का काल भामह के पूर्व निश्चित किया जा सके अन्यथा नहीं। किन्तु यह बात निश्चित है कि केवल इस श्लोक के आधार पर भामह के अलङ्कार विषयक किसी अन्य ग्रन्थ की कल्पना नहीं की जा सकती है। उनका छन्दःशास्त्र विषयक तो दूसरा ग्रन्थ हो सकता है किन्तु अलङ्कार शास्त्र के विषय में तो 'काव्यालङ्कार' के रहते अन्य दूसरा ग्रन्थ लिखे जाने की कोई सङ्गति नहीं लगती है।

छन्दःशास्त्र के विषय में भामह ने किसी ग्रन्थ की रचना की थी यह बात अन्य साहित्य ग्रन्थों में भामह के नाम से उद्धृत किये गये उद्धरणों से प्रतीत होती है। उनमें से एक उदाहरण तो हम 'अभिज्ञानशाकुन्तल' की राघव भट्ट कृत टीका में से ऊपर उद्धृत कर चुके हैं। उसी प्रकार का दूसरा उद्धरण 'वृत्त रत्नाकर' की टीका में नारायण भट्ट ने इस प्रकार दिया है -

'तदृक्तं भामहेन-

अवर्णात् सम्पत्तिर्भवति मुदिवर्णात् धनशता-
न्युवर्णाद् अख्यातिः सरभसमृवर्णाद्धरहितात्।।
तथा ह्येचः सौख्यं ङ-´-णरहितादक्षरगणात्
पदादौ विन्यस्ताद् भ-र-ब-ह-ल-हाहाविरहितात्।।' -वृत्तरत्नाकर, पृ06

'तदुक्तं भामहेन -

देवतावाचकाः शब्दाः ये च भद्रादिवाचकाः।
ते सर्वे नैव निन्द्याः स्युर्लिपितो गणतोपि वा।।
कः खो गो घश्च लक्ष्मीं वितरति वियशो ङस्तथा चः सुखं छः
प्रीतिं यो मित्रलाभं भयमरणकरौ झ-ञौ ट-ठौ खेद दुःखे।
डः शोभां ढो विशोभां भ्रमणमथ च णस्तः सुखं थश्च युद्धं
दो धः सौख्यं मुदं नः सुखभयमरणक्लेशदुःखं पर्वगः।।
यो लक्ष्मीं रश्च दाहं व्यसनमथ ल-वौ शः सुखं षश्च खेदं
सः सौख्यं हश्च खेदं विलयमपि च लः क्षः समृद्धिं करोति।
संयुक्तं चेह न स्यात् सुख-मरण-पटुर्वर्णविन्यासयोगः
पद्यादौ गद्यवक्त्रे वचसि च सकले प्राकृतादौ समोयम्।।'-वृत्तरत्नाकर, पृ0 7

यद्यपि ये सब उद्धरण बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हैं फिर भी इनके आधार पर यह सम्भावना मानी जा सकती है कि भामह ने सम्भव है छन्दःशास्त्र विषयक कोई अन्य ग्रन्थ लिखा हो।

भामह भट्ट के नाम से एक ग्रन्थ और मिलता है और वह है वररुचिके 'प्राकृत-प्रकाश' नामक प्राकृत-व्याकरण ग्रन्थ की 'प्राकृतमनोरमा' नामक टीका। प्राकृत-व्याकरण में इस टीका का बड़ा महत्त्व माना जाता है। पिशल आदि प्राकृत-व्याकरण के विद्वानों ने 'काव्यालङ्कार' और 'प्राकृतमनोरमा' दोनों के निर्माता एक ही भामह को माना है। इस प्रकार भामह के 1. 'काव्यालङ्कार' तथा 2. 'प्राकृतमनोरमा' दो ग्रन्थ तो उपलब्ध होते हैं और तीसरे छन्दःशास्त्र विषयक ग्रन्थ की भी रचना उन्होंने की थी इस बात का अनुमान किया जाता है। 'प्राकृतमनोरमा' 'प्राकृतप्रकाश' की टीका है। 'काव्यालङ्कार' स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसमें 6 परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में 60 श्लोक हैं और उनमें काव्य के शरीर का वर्णन किया गया है; द्वितीय और तृतीय दोनों परिच्छेदों में अलङ्कारों का वर्णन किया गया है। चतुर्थ परिच्छेद में दोषों का निरूपण किया है और उसमें 50 श्लोक हैं। पञ्चम परिच्छेद के 70 श्लोकों में न्याय निर्णय का प्रतिपादन किया है और षष्ठ परिच्छेद के 60 श्लोकों में शब्दु शुद्धि का विवेचन किया गया है। इस प्रकार 'काव्यालङ्कार' में कुल मिलाकर 400 श्लोक हैं जो 6 परिच्छेदों में विभक्त हैं। भामह ने स्वयं इस सबका विवरण निम्नलिखित प्रकार दिया है -

'षष्ट्या शरीरं निर्णीतं शतषष्ट्या त्वलङ्कृतिः।
पञ्चाशता दोषदृष्टिः सप्तत्या न्यायनिर्णयः।।
षष्ट्या शब्दस्य शुद्धिः स्यादित्येवं वस्तुपञ्चकम्।
उक्तं षड्भिः परिच्छेदैः भामहेन क्रमेण वः।।'

आचार्य दण्डी

भामह के बाद दूसरे आचार्य, जिन्होंने अलङ्कार शास्त्र पर स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थ रचना की, दण्डी हैं। भामह और दण्डी के पौर्वापर्य के निरूपण के प्रसङ्ग में हम पीछे देख चुके हैं कि दण्डी का काल अष्टम शताब्दी में पड़ता है। दण्डी ने अपने 'अवन्तिसुन्दरी कथा' में अपने को महाकवि भारवि का प्रपौत्र बतलाया है और बाण तथा मयूर कवि की प्रशंसा की है। अतएव उनका समय सप्तम शताब्दी में राजा हर्षवर्धन (राज्यकाल 606-648 तक) की राजसभा में रहने वाले बाणभट्ट के बाद अर्थात् आठवीं शताब्दी में है।

दण्डी की रचनाएं

'शार्ङ्गधर पद्धति' में श्लोक संख्या 174 पर राजशेखर के नाम से निम्नलिखित पद्य उद्धृत किया गया है -

'त्रयोग्नयस्त्रयो वेदा त्रयो देवास्त्रयो गुणाः।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।।'

अर्थात् तीन अग्नि, तीन वेद, तीन देव और तीन गुणों के समान दण्डी कवि के तीन ग्रन्थ्ज्ञ सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। इस श्लोक द्वारा राजशेखर ने दण्डी के तीन ग्रन्थों की विश्वविश्रुता बतलाया

है। किन्तु अभी कुछ पूर्व तक विद्वानों को दण्डी के तीन ग्रन्थों के नामों का भी पता नहीं था। दण्डी के 1. 'काव्यादर्श' तथा 2. 'दशकुमारचरित' दो ग्रन्थ तो लोकप्रसिद्ध हैं किन्तु इनका तीसरा ग्रन्थ कौन सा है इसका पता इस 20वीं शताब्दी के आरम्भ में विद्वानों को नहीं था। डॉ0 पिशल ने 'मृच्छकटिक' को दण्डी का तीसरा ग्रन्थ कहने का साहस कर डाला। 'दशकुमारचरित' की भूमिका में डॉ0 पीटर्सन ने तथा डॉ0 जैकोबी ने 'छन्दोविचित' नामक ग्रन्थ की दण्डी का तीसरा ग्रन्थ कहा है। किन्तु यह सिद्धान्त भी गलत निकला। उसके बाद कुछ लोगों ने 'कलापरिच्छेद' नामक किसी ग्रन्थ को दण्डी की तृतीय रचना माना। परन्तु यह बात भी केवल कल्पना मात्र ही ठहरी। उसमें कोई तत्त्व नहीं निकला। इस प्रकार दण्डी का तीसरा ग्रन्थ कौन-सा है इसके विषय में विद्वज्जन अभी तक अन्धकार में थे। 'प्रोसीडिंग्स एण्ड ट्रान्जैक्शन्स ऑफ दि सेकेण्ड ओरिएण्टल कॉन्फ्रेंस', पृ0 198201 तथा 'जनरल ऑफ दि मिथिक सोसाइटी' भाग 13, पृ0 671-685 के अनुसार अभी दक्षिण भारत में स्थित मद्रास के हस्तलिखित ग्रन्थों के राजकीय पुस्तकालय में 'अवन्तिसुन्दरी कथा' नामक एक ग्रन्थ की पाण्डुलिपि मिली है। इसके प्रारम्भिक भाग के देखने से स्पष्ट रूप से विदित होता है कि यह ग्रन्थ दण्डी ने लिखा है। इसी में दण्डी ने अपने को भारवि का प्रपौत्र कहा है। इस प्रकार इस 'अवन्तिसुन्दरी कथा' को मिलाकर दण्डी के तीन ग्रन्थ बन जाते हैं।

एक बात को जानकर और आश्चर्य होगा कि अभी तक कुछ लोग ऐसे भी हैं जो 'दशकुमारचरित' के दण्डी कृत होने में सन्देह करते हैं। श्री त्रिवेदी ने अपने सम्पादित 'प्रतापरूद्रयशोभूषण' की भूमिका में तथा श्री आगाशे ने 'दशकुमारचरित' की भूमिका में इस प्रकार का सन्देह प्रदर्शित किया है। श्री आगाशे का कहना यह है कि 'काव्यादर्श' के प्रणेता दण्डी बड़े कठोर आलोचक हैं।

'तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथञ्चन।
स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम्।।' - काव्यादर्श 1-7

'काव्यादर्श' के इस सिद्धान्त के अनुसार दण्डी काव्य में एक तनिक से भी दूषण को सहन नहीं करते हैं। सुन्दर चेहरे पर यदि एक भी कोढ़ का दाग हो जाय तो जैसे मुख का सारा सौन्दर्य नष्ट हो जाता है उसी प्रकार सुन्दर काव्य में एक भी दोष आ जाने पर काव्य का सारा सौन्दर्य जाता रहता है। इसलिए काव्य में एक भी दोष की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। यह दण्डी का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के आधार पर आगाशे महोदय का कहना है कि 'दशकुमारचरित', जिसमें कि सैकड़ों दोष पाये जाते हैं, किसी भी अवस्था में दण्डी की रचना नहीं हो सकता है।ग्राम्यत्व दोष के विवेचन में दण्डी ने -

'कन्ये कामयमानं मां न त्वं कामयसे कथम्।
इति ग्राम्योयमर्थात्मा वैरस्याय प्रकल्पते।।'- काव्यादर्श 1-63

'हे कन्ये, मैं तुमको चाहता हूँ फिर तुम मुझको क्यों नहीं चाहती हो' इस बात को भी दण्डी ने ग्राम्य दोष का उदाहरण माना है और इस प्रकार की उक्ति को भी वैरस्यापादक माना है। परन्तु 'दशकुमारचरित' में इससे भी कहीं अधिक ग्राम्यता के उदाहरण पाये जाते हैं। इससे भी

आगाशे महोदय ने अपने इस सिद्धान्त की पुष्टि करने का यत्न किया है कि 'दशकुमारचरित' दण्डी की रचना नहीं है।

परन्तु इस बात को लिखते समय आगाशे महोदय ने सिद्धान्त और व्यवहार के सार्वत्रिक भेद की ओर ध्यान नहीं दिया है। सिद्धान्त और व्यवहार का यह भेद तो सब जगह पाया जाता है। सिद्धान्त या लक्ष्य बिन्दु तो सदा ऊँचा होता है और रखना भी चाहिये। किन्तु व्यवहार में उसका उतना शुद्ध रूप में पालन लगभग असम्भव है। इसलिए यदि दण्डी के सिद्धान्त और व्यवहार में अन्तर पाया जाता है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दण्डी ही क्यों, कोई भी महाकवि आज तक ऐसे निर्दोष काव्य की रचना नहीं कर सकहा है जिसके ऊपर अँगुली न उठायी जा सके। कोई भी कवि या कोई व्यक्ति किसी भी कार्य को करे, सिद्धान्ततः यही चाहता है कि उसके कार्य में कोई कमी न रहने पाये, कोई दोष न निकाल सके, परन्तु फिर भी मनुष्य के प्रत्येक काम में कोई-न-कोई दोष रह ही जाता है। व्यक्ति विवेककार ने लिखा है -

'स्वकृतिष्वयन्त्रितः कथमनुशिष्यादन्यमयमिति न वाच्यम्।
वारयति भिषगपथ्यादितरान् स्वयमाचरन्नपि तत्।।'

वैद्य स्वयं अपथ्य का सेवन करते हुए भी दूसरों को अपथ्य का निषेध करता है। दण्डी ने 'काव्यादर्श' में तनिक से भी काव्य दोष की उपेक्षा न करने की बात लिखी है वह सब वैद्य के अपथ्य सेवन के निषेधक आदेश के समान हैं और 'कन्ये कामयमानं मां' आदि श्लोक में तो दण्डी ने यही दिखलाया है कि बात को इस प्रकार नग्न रूप में कहना सहृदयों के लिए रुचिकर नहीं होता है। उसी बात को यदि थोड़ी-सी शैली बदलकर यों कह दिया जाय कि -

'कामं कन्दर्पचाण्डालो मयि वामाक्षि निर्दयः।
त्वयि निर्मत्सरो दिष्ट्येत्यग्राम्योर्थो रसावहः।।'- काव्यादर्श 1-64

तो यह अर्थ ग्राम्यता दोष से रहित और रसावह हो जाता है। इसलिए 'दशकुमारचरित' में दोषों के विद्यमान होने से आगाशे महोदय ने जो यह परिणाम निकाला है कि वह दण्डी की रचना नहीं है वह अनुचित और असङ्गत है। दूसरी बात यह भी है कि 'दशकुमारचरित' दण्डी की अप्रौढ़ावस्था की रचना है इसलिए उसमें दोषों का होना स्वाभाविक है।

आगाशे महोदय ने 'दशकुमारचरित' को दण्डी की रचना न माने का दूसरा कारण यह बतलाया है कि 'दशकुमारचरित' की रचनाशैली बड़ी क्लिष्ट और समास बहुल है, जब कि 'काव्यादर्श' की रचना शैली बड़ी सरल समास रहित प्रसाद गुण युक्त है। इसलिए भी इन दोनों का रचयिता एक नहीं हो सकता है।किन्तु वह हास्यास्पद-सी बात है। 'दशकुमारचरित' गद्यग्रन्थ है। उसमें समास बाहुल्य गुण है, दोष नहीं। स्वयं 'काव्यादर्श' में दण्डी ने इस बात का समर्थन करते हुए लिखा है -

ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्।
पद्येप्यदाक्षिणात्यानामिदमेकं परायणम्।।'- काव्यादर्श 1-80

अर्थात् समास बाहुल्यात्मक ओज गुण ही तो गद्य की जान है और दाक्षिणात्य लोगों को छोड़कर अन्य लोग तो पद्य में भी समास बाहुल्य का प्रयोग पसन्द करते हैं। इसलिए गद्यात्मक 'दशकुमारचरित' में भी समास बाहुल्य पाया जाता है और वह उसमें सौन्दर्य का आधान कर रहा है। 'काव्यादर्श' तो गद्य-ग्रन्थ नहीं है; पद्यात्मक ग्रन्थ है। इसलिए उसमें समास का न होना या कम होना स्वाभाविक है। फिर 'काव्यादर्श' में समासभूयस्त्व नहीं है यह बात नहीं है।

'पयोधरतटोत्सङ्गलग्नसन्ध्यातपांशुका।

कस्य कामातुरं चेतो वारुणी न करिष्यति।।'- काव्यादर्श 1-84

इस पद्य में पूर्वार्द्ध भाग सारा का सारा मिलकर एक समस्त पद है। इसलिए 'दशकुमारचरित' के समास बाहुल्य के आधार पर उसको दण्डी की रचना न मानने का आगाशे महोदय का विचार किसी रूप में भी ग्राह्य नहीं हो सकता है।एक बात और है, संस्कृत साहित्य में दण्डी एक महा कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं।

'जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाभवत्।

कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि।।'

इस श्लोक में तो बाल्मीकि तथा व्यास के बाद तीसरे नम्बर पर दण्डी कवि को ही रखा गया है। सबसे पहिले जब वाल्मीकि इस जगत् में आये तो उनके लिए एकवचन 'कवि' शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। उस समय कोई दूसरा कवि नहीं कहलाता था। उसके बाद व्यास के आने पर 'कवी' यह द्विवचन में कवि शब्द का प्रयोग होने लगा, क्योंकि अब वाल्मीकि और व्यास दो कवि हो गये। किन्तु अभी तक 'कवयः' इस बहुवचन में कवि शब्द के प्रयोग का अवसर नहीं आया। कवि शब्द का बहुवचन में 'कवयः' प्रयोग दण्डी के बाद होना प्रारम्भ हुआ। यह तो कवि की प्रशंसा परक अतिशयोक्ति है। किन्तु इसका भाव इतना ही है कि दण्डी एक महाकवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनकी यह प्रसिद्धि मुख्य रूप से 'दशकुमारचरित' के आधार पर ही है। 'काव्यादर्श' के आधार पर कवित्व की प्रसिद्धि नहीं है। यदि उस 'दशकुमारचरित' को उनकी रचनाओं में से निकाल दिया जाय तो फिर उनकी इस प्रसिद्धि का आधार ही क्या रह जाता है। इसी प्रकार -

'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।

दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।'

इस प्रसिद्ध लोकोक्ति में दण्डी अपने 'दशकुमारचरित' के पदलालित्य के आधार पर ही स्थान पा सके हैं। इसलिए 'दशकुमारचरित' दण्डी की रचना नहीं है, आगाशे महोदय का यह कथन सर्वथा असङ्गत है। पता नहीं उन्होंने इस प्रकार की असङ्गत बात लिखने का साहस कैसे किया।

'काव्यादर्श'—

दण्डी के तीन ग्रन्थों में से अलङ्कारशास्त्र से सम्बद्ध ग्रन्थ 'काव्यादर्श' ही है। भारत में इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। सबसे पहिला संस्करण सन् 1863 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। उसमें प्रेम चन्द्र तर्कवागीश की टीका भी साथ में मुद्रित थी। उसके बाद सन् 1910 में

प्रो0 रङ्गाचार्य द्वारा सम्पादित एक 'तरुण वाचस्पति' कृत टीका तथा दूसरी 'हृदयङ्गमा' टीका जिसके निर्माता के नाम का पता नहीं है, इन दो टीकाओं सहित एक संस्करण मद्रास से प्रकाशित हुआ। उसके बाद पूना से डॉ0 बेलवलकर और .... रङ्गाचार्य रेड्डी द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ। 'काव्यादर्श' में सामान्यतः तीन परिच्छेद हैं। किन्तु मद्रास से प्रकाशित रङ्गाचार्य वाले संस्करण में चार परिच्छेद रखे गये थे। अन्य संस्करणों में जिसको तृतीय परिच्छेद के रूप में दिया गया है उसको रङ्गाचार्य वाले संस्करण में दो भागों में विभक्त कर दिया गया था। उसमें दोषों के निरूपण से चतुर्थ परिच्छेद का आरम्भ किया गया था। कलकत्ता और मद्रास वाले संस्करण में दूसरा अन्तर यह भी था कि कलकत्ता वाले संस्करण में कुल श्लोकों की संख्या 660 थी और मद्रास वाले संस्करण में वह संख्या 663 थी। यह तीन संख्याओं का अन्तर इस प्रकार है कि दो श्लोक तो तृतीय परिच्छेद के अन्त में अधिक पाये जाते हैं और एक श्लोक चतुर्थ परिच्छेद के आरम्भ में अधिक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त कलकत्ता वाले संस्करण के तृतीय परिच्छेद के 190 वें श्लोक के बाद -

'आधिव्याधिपरीताय अद्य श्वो वा विनाशिने।
को हि नाम शरीराय धर्मापेतं समाचरेत्।।'

यह एक चौथा श्लोक मद्रास संस्करण में अधिक पाया जाता है। इस प्रकार मद्रास संस्करण में चार श्लोक अधिक हो जाते हैं। किन्तु इसके साथ ही 2 य परिच्छेद का 'लिम्पतीव तमोङ्गानि' वाला प्रसिद्ध श्लोक मद्रास वाले संस्करण में नहीं पाया जाता है। इसलिए इन दोनों संस्करणों में तीन श्लोकों का ही अन्तर रह जाता है। कलकत्ता वाले संस्करण में कुल 660 श्लोक थे और मद्रास वाले संस्करण में 663 श्लोक थे।

'काव्यादर्ष' के प्रथम परिच्छेद में काव्य का लक्षण, उसके गद्य, पद्य और मिश्रकाव्य रूप तीन भेद, सर्गबन्ध महाकाव्य का लक्षण देने के बाद गद्य काव्य के कथा तथा आख्यायि का रूप भामहाभिमत दो भेंदों का उल्लेख कर फिर उसका खण्डन कर दिया है। उन्होंने कथा और आख्यायिका को एक ही जाति माना है। उसके बाद साहित्य का भाषा के आधार पर 1. संस्कृत, 2. प्राकृत, 3. अपभ्रंश तथा 4. मिश्ररूप से चार भागों में विभाजन किया है। उसके बाद काव्य के दस गुणों के लिए 'वैदर्भ' तथा 'गौड' दो मार्गों का उल्लेख कर उसी प्रसङ्ग में अनुप्रास का लक्षण तथा उदाहरण दिये हैं। इसके बाद उत्तम कवि बनने के लिए आवश्यक 1. प्रतिभा 2. श्रुत तथा 3. अभियोग इन तीन गुणों का वर्णन किया है।

द्वितीय परिच्छेद में अलङ्कार का सामान्य लक्षण करने के बाद 35 अलङ्कारों के लक्षण तथा उदाहरण दिये हैं। वे 35 अलङ्कार, जिनका वर्णन दण्डी ने द्वितीय परिच्छेद में किया है, क्रमशः निम्नलिखित प्रकार है -

1.स्वभावोक्ति, 2. उपमा, 3. रूपक, 4. दीपक, 5. आवृत्ति, 6. आक्षेप, 7. अर्थान्तरन्यास, 8. व्यतिरेक, 9. विभावना, 10. समासोक्ति, 11. अशियोक्ति, 12. उत्प्रेक्षा, 13. हेतु, 14. सूक्ष्म, 15. लेश (या लव), 16. यथासंख्या (याक्रम), 17. प्रेय, 18. रसवत्, 19. ऊर्जस्वि, 20. पर्यायोक्त,

21. समाहित, 22. उदात्त, 23. अपह्नुति, 24. श्लेष, 25. विशेषोक्ति, 26. तुल्ययोगिता, 27. विरोध, 28. अप्रस्तुत प्रशंसा, 29. व्याजोक्ति, 30 निदर्शना, 31. सहोक्ति, 32. परिवृत्ति, 33. आशीः, 34. संसृष्ट और 35. भाविक।

'काव्यादर्श' के तृतीय परिच्छेद में ग्रन्थकार ने 'यमक' का विस्तार के साथ वर्णन किया है और चित्रबन्ध के गोमुत्रिका, अर्धभ्रम, सर्वतोभद्र, स्वरस्थानवर्णनियम आदि भेदों का तथा प्रहेलिका के दस भेदों का वर्णन करने के बाद दस प्रकार के काव्य दोषों का वर्णन किया है। मद्रास वाले संस्करण में इन दोषों के विवेचन को चतुर्थ परिच्छेद में दिखलाया गया है।

रुद्रट का परिचय—

वामन के बाद अगले आचार्य रुद्रट हैं। ये साहित्य शास्त्र के इतिहास में एक अत्यन्त प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। इनका दूसरा नाम शतानन्द था। किन्तु वह नाम अधिक प्रसिद्ध नहीं है। इनकी प्रसिद्धि रुद्रट नाम से ही है। इनके पिता का नाम वामुक भट्ट था। नाम से प्रतीत होता है कि ये भी कश्मीरी थे। अपने वंश के परिचय रूप् में इनके एक श्लोक को टीकाकार ने विशेष रूप से निम्नलिखित प्रकार उल्लिखित किया है -

'अत्र च चक्रे स्वनामाङ्कभूतोयं श्लोकः कविनान्तर्भावितो यथा -
'शतानन्दपराख्येन भट्टवामुकसूनुना।
साधितं रुद्रटेनेदं सामाजा धीमतां हितम्।।'

- काव्यालङ्कार 5। 12-14 की टीका

इनके मत का उल्लेख धनिक, मम्मट, प्रतीहारेन्दुराज, राजशेखर आदि अनेक आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में किया है। किन्तु इनमें सबसे पूर्ववर्ती उल्लेख राजशेखर द्वारा किया गया है। राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में 'काकुवक्रोक्तिर्नाम शब्दालङ्कारोयमिति रुद्रटः' 'काव्यमीमांसा, (अध्याय 7, पृष्ठ 31) लिखकर रुद्रट के मत का उल्लेख किया है। राजशेखर का काल 920 ई0 के लगभग माना जाता है। इसलिए रुद्रट का काल उनके पहले नवम शताब्दी में 850 ई0 के लगभग पड़ता है।

ऐसा जान पड़ता है कि साहित्य शास्त्र के सारे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना कश्मीर में हुई और उनमें से अधिकांश लोगों ने अपने ग्रन्थों के नाम भी 'काव्यालङ्कार' ही रखे हैं। इस परम्परा के अनुसार कश्मीरवासी रुद्रट के ग्रन्थ का नाम भी 'काव्यालङ्कार' होना चाहिये और है भी। रुद्रट का 'काव्यालङ्कार' ग्रन्थ आर्या छन्द में लिखा गया है। इसमें कुल 714 आर्याएँ हैं। ग्रन्थ 16 अध्यायों में विभक्त है, जिनमें से 11 अध्यायों में अलङ्कारों का वर्णन है। अन्तिम अध्याय में रसों की मीमांसा की गयी है। इसमें नौ रसों के साथ एक 'प्रेय' नामक रस की और कल्पना कर के रसों की संख्या दस कर दी गयी है। नायक नायिका भेद का भी विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। अलङ्कारों के विवेचन में इन्होंने नयी बात यह की है कि वैज्ञानिक आधार पर अलङ्कारों का विभाजन करने का यत्न किया है। वास्तव में औपम्य, अतिशय तथा श्लेष इन चार को इन्होंने

अलङ्कारों का विभाजक तत्त्व माना है और इसीके आधार पर अलङ्कारों को चार भागों में विभक्त किया है। यह इनका बिलकुल नया दृष्टिकोण है। रुद्रट ने अलङ्कार क्षेत्र में 1. मत, 2. साम्य, 3. पिहित और 4. भाव नाम के चार बिलकुल नवीन अलङ्कारों की कल्पना की है, जिनका उल्लेख प्राचीन और नवीन किन्हीं ग्रन्थों में नहीं मिलता है। कुछ प्राचीन अलङ्कारों का इन्होंने नवीन रूप में नया नामकरण किया है। जैसे भामह आदि के 'व्याजस्तुति' के लिए इन्होंने 'व्याजश्लेष' (10-11) शब्द का प्रयोग किया है। 'स्वभावोक्ति' के स्थान पर 'जाति' (9-3) और 'उदात्त' के स्थान पर 'अवसर' (7-103) आदि नामों का प्रयोग किया है।

अभ्यास प्रश्न -

1.प्रश्न-सन् 1825 में विलसन महोदय ने कुछ संस्कृत नाटकों का किस भाषा मे अनुवाद किया था ?

2-प्रश्न-'काव्यालङ्कार' ग्रन्थ के लेखक कौन है ?

3-प्रश्न-दशकुमारचरित ग्रन्थ के लेखक कौन है ?

4-प्रश्न- दण्डी के अलङ्कारशास्त्र से सम्बद्ध ग्रन्थ कौन हैं ?

5-प्रश्न- दण्डी की कितनी कृतियाँ प्रसिद्ध हैं ?

1.4 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत भरत, भामह दण्डी एवं रुद्रट के जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व के विषय में आपने अध्ययन किया। भामह और दण्डी के बाद अगले आचार्य रुद्रट हैं। ये साहित्य शास्त्र के इतिहास में एक अत्यन्त प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। इनका दूसरा नाम शतानन्द था। किन्तु वह नाम अधिक प्रसिद्ध नहीं है। इनकी प्रसिद्धि रुद्रट नाम से ही है। इनके पिता का नाम वामुक भट्ट था। नाम से प्रतीत होता है कि ये भी कश्मीरी थे। अपने वंश के परिचय रूप में इनके एक श्लोक को टीकाकार ने विशेष रूप से उल्लिखित किया है। भामह के ग्रन्थ मे काव्यशास्त्रीय तत्वों का विवेचन किया गया है।

इनका गन्थ काव्यालंकार है। आचार्य दण्डी नें काव्यादर्श में काव्य के लक्षण सहित अन्य काव्यशास्त्रीय तत्वों का सम्यक्तया विवेचन किया है।आचार्य रूद्रट रसवादी आचार्य कहे जाते हैं। रुद्रट का 'काव्यालङ्कार' ग्रन्थ आर्या छन्द में लिखा गया है। इसमें कुल 714 आर्याएँ हैं। ग्रन्थ 16 अध्यायों में विभक्त है, जिनमें से 11 अध्यायों में अलङ्कारों का वर्णन है। अतः इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इन आचार्यों का परिचय समझा सकेगें।

1.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
कालिदासस्य	कालिदास का
भारवेः	भारवि का
अर्थगौरवम्	अर्थगौरव
दण्डिनः	दण्डि ने

पदलालित्यम	पदलालित्य
माघे	माघ में
सन्ति	होते हैं
यो गुणाः	तीन गुण

1. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.उत्तर -सन् 1825 में विलसन महोदय ने कुछ संस्कृत नाटकों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया था।

2.उत्तर-'काव्यालङ्कार' ग्रन्थ के लेखक कौन भामह है।

3.उत्तर-'काव्यालङ्कार' ग्रन्थ के लेखक दण्डी है।

4.उत्तर-दण्डी के अलङ्कारशास्त्र से सम्बद्ध ग्रन्थ 'काव्यादर्श' हैं।

5.उत्तर- दण्डी की तीन कृतियाँ प्रसिद्ध हैं।

1. 7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1.संस्कृत साहित्य का इतिहास,बलदेव उपाध्याय,प्रकाशक, शारदा निकेतन, कस्तूरवानगरवाराणसी।

2. काव्यप्रकाश,आचार्य मम्मट,चौखम्भा संस्कृत, भारती वाराणसी

1. 8 उपयोगी पुस्तकें

3. काव्यशास्त्र का इतिहास -पी 0 वी 0 काणे काव्यमाला सिरीज

1. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.दण्डी का विस्तृत परिचय दीजिये।

2. भरत का परिचयात्मक वर्णन कीजिए।

3.भामह और दण्डी का तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत कीजिए।

इकाई.2 उद्भट, वामन, कुन्तक जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 उद्भट, वामन, कुन्तक, जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 उपयोगी पुस्तके

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1.प्रस्तावना

काव्यशास्त्र से सम्बन्धित खण्ड पाच की पहली इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि दण्डी के समान उ˜ट ने भी साहित्य शास्त्र के सम्बन्ध में तीन ग्रन्थ लिखे। उनके एक ग्रन्थ 'भामहविवरण' का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। यह ग्रन्थ भामह के 'काव्यालङ्कार' की व्याख्या के रूप में लिखा गया था, किन्तु इस समय उपलब्ध नहीं होता है। अनेक साहित्य ग्रन्थों में उसका उल्लेख आदर पूर्वक किया जाता है। उनके शेष दो ग्रन्थों में एक 'काव्यालङ्कार सारसंग्रह' है।

वामन रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं।वक्रोक्ति को काव्य में अलंकार मानने वाले आचार्य कुन्तक हैं, इन्होंने वक्रोक्तिजीवितम् की रचना की है ।इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में काव्यलक्षण, प्रयोजन आदि की विवेचना भी की गयी है।**वक्रोक्तिः काव्य जीवितम्** इनका सिद्धान्त है ।

अतः इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप उद्भट, वामन, कुन्तक, के जीवन वृत्त, समय व कृतित्त्व आदि पर प्रकाश डाल सकेगें ।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप उद्भट्ट, वामन, कुन्तक के जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व सम्बन्धी महत्त्व पूर्ण बातों को जानकर -

- ❖ उद्भट्ट, के व्यक्तित्व के विषय में बता सकेंगे।
- ❖ वामन के सिद्धान्त को समझा सकेंगे।
- ❖ कुन्तक के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए ,वक्रोक्ति सिद्धान्त का परिचय दे सकेंगे ।
- ❖ इन आचार्यों के सिद्धान्तों का परीक्षण कर सकेंगे ।

2.3 उद्भट्ट, वामन, कुन्तक का जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व

उद्भट—

दण्डी के बाद आचार्य भट्टोद्भट का नाम आता है जिन्होंने अलङ्कार शास्त्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। भट्ट उद्भट, जैसा कि उनके नाम से विदित होता है, कश्मीरी ब्राह्मण थे। वे कश्मीर के राजा जयादित्य की राजसभा के पण्डित नहीं, अपितु सभापति थे। उन्हें राज्य की ओर से प्रतिदिन एक लाख दीनार वेतन रूप में मिलता था। कल्हण की 'राजतरङ्गिणी' में उनका वर्णन करते हुए लिखा गया है -

'विद्वान् दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः।
भट्टोभूदु˜टस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः'।। 4-495

कश्मीर में महाराज जयापीड का शासनकाल 779 ई0 से लेकर 813 ई0 तक माना जाता है। इसलिए उद्भट का समय भी आठवीं शताब्दी का अन्तिम तथा नवम शताब्दी का प्रारम्भिक भाग पड़ता है।

दण्डी के समान उद्भट ने भी साहित्य शास्त्र के सम्बन्ध में तीन ग्रन्थ लिखे। अनेक साहित्य ग्रन्थों में भामहविवरण का उल्लेख आदर पूर्वक किया जाता है। उनके शेष दो ग्रन्थों में एक 'काव्यालङ्कार सारसंग्रह' और दूसरा 'कुमारसम्भव' काव्य है। इनमें से केवल 'काव्यालङ्कार सारसंग्रह' में साहित्यशास्त्र के तत्व पाये जाते हैं। 'काव्यालङ्कार सारसंग्रह' में उद्भट ने जितने भी उदाहरण दिये हैं वे सब अपने बनाये हुए इस 'कुमारसम्भव' काव्य से ही दिये हैं। महाकवि कालिदास का भी 'कुमारसम्भव' नामक एक काव्य है किन्तु उद्भट का 'कुमारसम्भव' काव्य उससे बिलकुल भिन्न है। यद्यपि दोनों काव्यों की रचना एक ही कथानक को आधार मानकर की गयी है, किन्तु रामचरित को लेकर बनाये गये अनेक काव्यों और नाटकों के समान ये दोनों काव्य बिलकुल अलग हैं। फिर भी उन दोनों के कुछ श्लोकों की तुलना मनोरञ्जक होगी। 'कुमारसम्भव' के कथानक के अनुसार पार्वती जी जब शिव की प्राप्ति के लिए तपस्या कर रही थी तब उनकी परीक्षा लेने के लिए शिवजी ब्रह्मचारी का वेश बनाकर पार्वती के पास जाते हैं। उस समय पार्वती की तपस्या तथा शिव के जाने का वर्णन दोनों महाकवियों ने बड़े सुन्दर रूप में किया है। उस प्रसङ्ग के दो-तीन श्लोक दोनों कवियों के हम नीचे दे रहे हैं -

उद्भट का श्लोक - **'प्रच्छन्ना शस्यते वृत्तिः स्त्रीणां भावपरीक्षणे।**
प्रतस्थे धूर्जटिरतस्तनुं स्वीकृत्य बाटवीम्।।' 2-10

कालिदास का श्लोक - **विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं**
शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा।।' 5-30

उद्भट का श्लोक - **'अपश्यच्चातिकष्टानि तप्यमानां तपांस्युमाम्।**
असम्भाव्यपतीच्छानां कन्यानां का परा गतिः।।'

कालिदास का श्लोक - **'इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां**
समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं
तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः।।' 5-2

उद्भट का श्लोक - **'शीर्णपर्णाम्बुवाताशकष्टेपि तपसि स्थिताम्।**
समुद्वहन्तीं नापूर्वं गर्वमन्यतपस्विवत्।। 2-1

कालिदास का श्लोक - **'स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता**
परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः।।' 5-28

'काव्यालङ्कार सार संग्रह'

भट्ट उद्भट का ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार सार संग्रह' है। यह ग्रन्थ 6 वर्गों में विभक्त है। इसमें कुल मिलाकर 79 कारिकाएँ हैं और उनमें 41 अलङ्कारों के लक्षण आदि दिये गये हैं।6 वर्गों में उन 41 अलङ्कारों का विभाजन निम्नलिखित प्रकार किया गया है -

प्रथम वर्ग - 1. पुनरुक्तवदाभास, 2. छेकानुप्रास, 3. त्रिविध अनुप्रास (परुषा, उपनागरिका, ग्राम्या या कोमला वृत्ति), 4. लाटानुप्रास, 5. रूपक, 6. उपमा, 7. त्रिविध दीपक (आदि दीपक, मध्य दीपक, अन्तदीपक), 8. प्रतिवस्तूपमा।

द्वितीय वर्ग - 1. आक्षेप, 2. अर्थान्तरन्यास, 3. व्यतिरेक, 4. विभावना, 5. समासोक्ति, 6. अतिशयोक्ति।

तृतीय वर्ग - 1. यथासंख्य, 2. उत्प्रेक्षा, 3. स्वभावोक्ति।

चतुर्थ वर्ग - 1. प्रेय, 2. रसवत्, 3. ऊर्जस्विन्, 4. पर्यायोक्त, 5. समाहित।

पञ्चम वर्ग - 1. अपहनुति, 2. विशेषोक्ति, 3. विरोध, 4. तुल्ययोगिता, 5. अप्रस्तुत प्रशंसा, 6. व्याजस्तुति, 7. निदर्शना, 8. उपमेयोपमा, 9. सहोक्ति 10. सङ्कर (चतुर्विध), 11. परिवृत्ति।

षष्ठ वर्ग - 1. अनन्वय, 2. ससन्देह, 3. संसृष्टि, 4. भाविक, 5. काव्यलिङ्ग, 6. दृष्टान्त।

इन सब अलङ्कारों का वर्णन 79 कारिकाओं में किया गया है और उनके उदाहरण रूप में लगभग 100 श्लोक ग्रन्थकार ने अपने 'कुमारसम्भव काव्य' में से ही उद्धृत किये हैं।

इन 41 अलङ्कारों में से 1. पुररुक्तवदाभास, 2. काव्यलिङ्ग, 3. छेकानुप्रास, 4. दृष्टान्त और 5. सङ्कर ये पाँच अलङ्कार ऐसे हैं जो भामह के 'काव्यालङ्कार' में नहीं पाये जाते हैं। किन्तु उद्भट ने एक रूप में उनकी स्थापना की है। ये पाँचों अलङ्कार दण्डी के 'काव्यादर्श' में भी नहीं पाये जाते हैं।

1. उत्प्रेक्षावयव, 2. उपमा रूपक और 3. यमक ये तीन अलङ्कार ऐसे हैं जो भामह ने और दण्डी ने उत्प्रेक्षा के अन्तर्गत माने हैं किन्तु उद्भट ने उनको नहीं माना है।

1. लेश, 2. सूक्ष्म तथा 3. हेतु ये तीन अलङ्कार दण्डी ने माने हैं। भामह ने उनका निषेध किया है। भामह के समान उद्भट भी इन तीनों अलङ्कारों को नहीं मानते हैं, इसलिए उन्होंने अपने ग्रन्थ में इन तीनों अलङ्कारों की कोई चर्चा नहीं की है। 1. रसवत्, 2. प्रेय, 3. ऊर्जस्वि, 4. समाहित और 5. श्लिष्ट ये पाँच अलङ्कार ऐसे हैं जिनका वर्णन तो भामह और दण्डी ने किया है, किन्तु उनके लक्षण दोनों जगह अस्पष्ट हैं। उद्भट ने उनके लक्षण बहुत स्पष्ट रूप से प्रस्तुत कर दिये हैं। इस प्रकार पुनरुक्तवदाभासादि पाँच अलङ्कारों की स्थापना तथा रसवत् आदि पाँच अलङ्कारों के लक्षणों का स्पष्टीकरण साहित्यशास्त्र को उ˜ट की अपनी विशेष देन है।

अचार्य वामन

अलङ्कारशास्त्र के आचार्यों में उद्भट के बाद वामन का नाम आता है। साहित्यशास्त्र के इतिहास में वामन का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है। ये रीतिसम्प्रदाय नाम से प्रसिद्ध साहित्य शास्त्र के एक प्रमुख सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। 'रीतिरात्मा काव्यस्य' लिखकर इन्होंने रीति को काव्य की आत्मा माना है। इस सिद्धान्त के कारण इनका साहित्य शास्त्र के इतिहास में विशेष महत्त्व माना गया है। उद्भट के समान वामन भी कश्मीर के निवासी उद्भट के समकालीन और सहयोगी थे। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उद्भट कश्मीर राज जयादित्य की राजसभा के सभापति थे। आचार्य

वामन उन्हीं जयादित्य के मन्त्री थे। 'राजतरङ्गिणी' में जहाँ उद्भट के सभापति होने की बात लिखी है, वहीं वामन के जयादित्य के मन्त्री होने की बात भी इस प्रकार लिखी है -

'मनोरथः शङ्खदत्तश्चटकः सन्धिमांस्तथा।

बभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मन्त्रिणः।।'- राजतरङ्गिणी 4-497

जयादित्य का राज्यकाल 779 से 813 ई0 तक माना जाता है। अतएव इनका समय आठवीं शताब्दी के अन्त में और नवम शताब्दी के आरम्भ में पड़ता है।

वामन का एकमात्र ग्रन्थ 'काव्यालङ्कारसूत्र' है। अलङ्कार शास्त्र पर यह एक ऐसा ग्रन्थ है जो सूत्र शैली में लिखा गया है। यह ग्रन्थ पाँच अधिकरणों में विभक्त है। प्रत्येक अधिकरण दो या तीन अध्यायों में विभक्त किया गया है। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में बारह अध्याय हैं। इन बारहों अध्यायों में मिलाकर सूत्रों की संख्या 312 है। ग्रन्थ के प्रथम अधिकरण में काव्य के प्रयोजन, अधिकारी का वर्णन कर के रीति को काव्य की आत्मा सिद्ध किया है। रीति को काव्य की आत्मा बतलाने वाले प्रसिद्ध सिद्धान्त का निरूपण कर, फिर रीति के तीन भेद तथा काव्य के अनेक प्रकार का वर्णन किया गया है। इस अधिकरण का नाम 'शरीराधिकरण' है और उसमें तीन अध्याय हैं। द्वितीयाधिकरण का नाम 'दोषदर्शनाधिकरण' है। इसमें दो अध्याय हैं जिनमें काव्य के दोषों का विवेचन किया गया है। तीसरे अधिकरण का नाम 'गुणविवेचनाधिकरण' है। इसमें दो अध्याय हैं, जिनमें काव्य के गुणों का विवेचन किया गया है। इसमें ग्रन्थकार ने गुण तथा अलङ्कारों का भेद भी दिखलाया है। ''काव्य-शोभायाः कर्तरो धर्मा गुणाः'' (3-1-1), ''तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः'' (3-1-2), इन सूत्रों में गुण तथा अलङ्कार के भेद निरूपण से ही इस अधिकरण का आरम्भ हुआ है। किन्तु उत्तरवर्ती मम्मटादि आचार्यों ने वामन के इस मत की बड़ी कटु आलोचना की है। वामन को गुण तथा अलङ्कार का यह भेद दिखलाने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि इनके पूर्ववर्ती उद्भट ने काव्य में गुण तथा अलङ्कारों का भेद नहीं माना है। उद्भट का कहना था कि लोक में तो शौर्यादि गुणों तथा हारादि अलङ्कारों में यह भेद किया जा सकता है कि शौर्यादि गुण आत्मा में समवाय सम्बन्ध से रहते हैं और हारादि अलङ्कार संयोग सम्बन्ध से शरीर में रहते हैं, इसलिए वे दोनों भिन्न हैं। किन्तु काव्य में तो ओज आदि गुण तथा उपमादि अलङ्कार दोनों समवायसम्बन्ध से ही रहते हैं इसलिए उनमें कोई भेद नहीं है। उद्भट के इस मत का खण्डन करने के लिए वामन को गुण-निरूपण करने वाले तृतीय अधिकरण के आरम्भ में ही गुण तथा अलङ्कारों का यह भेद करना पड़ा।

चतुर्थ अधिकरण का नाम 'आलङ्कारिक अधिकरण' है। इसमें तीन अध्याय हैं। पाँचवे अधिकरण का नाम 'प्रायोगिकाधिकरण' है। इसमें दो अध्याय हैं और शब्द प्रयोग के विषय में विवेचन किया गया है।

इस ग्रन्थ के तीन भाग हैं - 1. सूत्र, 2. वृत्ति तथा 3. उदाहरण। सूत्र और वृत्ति दोनों भागों की रचना वामन ने स्वयं की है।

'प्रणम्य परमं ज्योतिर्वामनेन कविप्रिया।

काव्यालङ्कार सूत्राणां वृत्तिर्विधीयते।'

अर्थात् वामन ने अपने काव्यालङ्कार सूत्रों के ऊपर 'कविप्रिया' नाम की वृत्ति स्वयं ही लिखी है। इस प्रकार सूत्र तथा वृत्ति दो भागों की रचना तो स्वयं वामन ने की है। किन्तु उदाहरणस्वरूप तीसरे भाग में उन्होंने कुछ उदाहरण अपने भी दिये हैं और अधिकांश उदाहरण दूसरों के ग्रन्थों से लिये हैं। चतुर्थ अधिकरण के अन्त में उन्होंने स्वयं लिख है –

'एभिर्निदर्शनैः स्वीयैः परकीयैश्च पुष्कलैः।'

अन्य जिन ग्रन्थों से उदाहरण लेकर वामन ने अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किये हैं उनमें 'अमरुकशतक', 'उत्तररामचरित', 'कादम्बरी', 'किरातार्जुनीय', 'कुमारसम्भव', 'मालतीमाधव', 'मृच्छकटिक', 'मेघदूत', 'रघुवंश', 'विक्रमोर्वशीय', 'वेणीसंहार', 'अभिज्ञानशाकुन्तल', 'शिशुपालवध', 'हर्षचरित' आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'काव्यालङ्कारसूत्र' वामन का एकमात्र ग्रन्थ है किन्तु बीच में वह भी लुप्त हो गया था। प्रतीहारेन्दुराज के गुरु मुकुल भट्ट को कहीं से उसकी एक आदर्श प्रति मिली, उसके आधार पर इसका फिर प्रसार और प्रचार हो सका है। इस बात का उल्लेख 'काव्यालङ्कार' के टीकाकार सहदेव ने निम्नलिखित प्रकार किया है -

'वेदिता सर्वशास्त्राणां भट्टोभून्मुकुलाभिधः।
लब्ध्वा कुतश्चिदादर्शं भ्रष्टाम्नायं समुद्धृतम्।।
काव्यालङ्कारशास्त्रं यत् तेनैतद्वामनोदितम्।
असूया तन्न कर्तव्या विशेषालोकिभिः क्वचित्।।'

कुन्तक—

कुन्तक साहित्य शास्त्र के एक प्रमुख आचार्य हैं। ये साहित्य के परम मान्य वक्रोक्ति सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं। उनका समय आनन्दवर्धन के बाद राजशेखर तथा महिमभट्ट के बीच में पड़ता है। उन्होंने 'वक्रोक्तिजीवित' में (पृ0 196 पर) 'यस्मादत्र ध्वनिकारेण व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावोत्र सुतरां समर्थितस्तत् किं पौनरुक्त्येन' लिखकर ध्वनिकार तथा (पृ0 156 पर) 'भवभूतिराजशेखरविरचितेषु बन्धसौन्दर्यसुमनेषु मुक्तकेषु परिदृश्यते' लिखकर राजशेखर का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि वे आनन्दवर्धन और राजशेखर के भी बाद हुए हैं।

स्पष्ट रूप से कुन्तक के नाम का उल्लेख किया है इसलिए यह निश्चय है कि कुन्तक महिमभट्ट के पूर्ववर्ती हैं। राजशेखर का काल उनके शिष्य कन्नौज के राजा महेन्द्र पाल तथा उनके पुत्र महिपाल के काल के आधार पर दशम शतारब्दी का प्रारम्भिक भाग निर्धारित किया जाता है और महिमभट्ट का काल ग्यारहवीं शताब्दी के पहिले ही मानना होगा, क्योंकि ग्यारहवीं शताब्दी में अलङ्कार सर्वस्वकार रुय्यक ने महिमभट्ट के मत का उल्लेख किया है। इसलिए महिमभट्ट के पूर्ववर्ती होने के कारण कुन्तक का काल दशम शताब्दी का अन्तिम भाग मानना होगा। राजशेखर, कुन्तक और महिमभट्ट ये सब थोड़े-थोड़े अन्तर से ही पूर्व-पश्चाद्वर्ती हैं, वैसे ये सब दशम शताब्दी के ही साहित्यक महापुरुष हैं।कुन्तक का एकमात्र ग्रन्थ 'वक्रोक्तिजीवित' है। किन्तु उस एक ही

ग्रन्थ ने कुन्तक के नाम को अमर कर दिया है। महिमभट्ट के अतिरिक्त गोपालभट्ट ने 'साहित्यसौदामिनी' नामक ग्रन्थ के आरम्भ में कुन्तक की प्रशंसा करते हुए लिखा है -

'वक्रानुरञ्जिनीमुक्तिं शुक इव मुखे वहन्।
कुन्तकः क्रीडति सुखं कीर्तिस्फटिकपञ्जरे।।'

'ध्वन्यालोक' आदि ग्रन्थों के समान 'वक्रोक्तिजीवित' में भी कारिका, वृत्ति और उदाहरण, तीन भाग हैं। कारिका और वृत्ति दोनों के लेखक कुन्तक ही हैं। उदाहरण प्रसिद्ध काव्य ग्रन्थों से लिये गये हैं। ग्रन्थ चार उन्मेषों में विभक्त किया गया है। प्रथम उन्मेष में काव्य के प्रयोजन, लक्षण तथा प्रतिपाद्य विषय षड्विधवक्रता का सामान्य उल्लेख किया गया है। द्वितीय उन्मेष में षड्विध-वक्रता में से 1. वर्णविन्यासवक्रता, 2. पदपूर्वार्द्धवक्रता तथा 3. प्रत्ययवक्रता इन तीन प्रकार की वक्रताओं का प्रतिपादन किया गया है। तृतीय उन्मेष में वाक्यवक्रता का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। उसी के भीतर अलङ्कारों का अन्तर्भाव हो जाता है। चतुर्थ उन्मेष में वक्रोक्ति के अन्तिम दो भेदों अर्थात् प्रकरणवक्रता तथा प्रबन्धवक्रता का निरूपण किया गया है।

कुन्तक अभिधावादी आचार्य हैं। वैसे ये लक्ष्य-व्यङ्ग्î अर्थ भी मानते हैं, किन्तु उनका अन्तर्भाव वाच्य में ही कर लेते हैं-'यस्मादर्थप्रतीतिकारित्वात् उपचारात् तावपि वाचकावेव। एवं द्योत्यव्यङ्गयोर्थयोः प्रत्येयत्वसामान्यदुपचारात् वाच्यत्वमेव' (का0 1-8 का0) और उस वाचकत्व का अर्थ 'कविविवक्षितविशेषाभिधानक्षमत्वमेव वाचकत्वलक्षणम्' किया है।

अभ्यास प्रश्न -

1.प्रश्न आचार्य भट्टोउद्भट ने किस शास्त्र के ऊपर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है ?

2-प्रश्न - भट्ट उद्भट, कौन से ब्राह्मण थे ?

3-प्रश्न - भट्ट उद्भट,किस राजसभा के सभापति थे ?

4-प्रश्न - कश्मीर में महाराज जयापीड का शासनकाल कबसे कब तक माना जाता है।

5-प्रश्न - उद्भट्ट की कितनी कृतियाँ प्रसिद्ध हैं ?

2.4 सारांश

इस इकाई में उद्भट्ट, वामन, कुन्तक जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व के विषय में वर्णन किया गया है।कुन्तक साहित्य शास्त्र के एक प्रमुख आचार्य हैं। ये साहित्य के परम मान्य वक्रोक्ति सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं। उनका समय आनन्दवर्धन के बाद राजशेखर तथा महिमभट्ट के बीच में पड़ता है। उन्होंने 'वक्रोक्तिजीवित' में'यस्मादत्र ध्वनिकारेण व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावोत्र सुतरां समर्थितस्तत् किं पौनरुक्त्येन' लिखकर ध्वनिकार तथा 'भवभूतिराजशेखरविरचितेषु बन्धसौन्दर्यसुमनेषु मुक्तकेषु परिदृश्यते' लिखकर राजशेखर का उल्लेख किया है। सभी आचार्य अलग अलग मतों के पोरूाक तो है किन्तु इन्होनें साहित्यशास्त्र को बढाने में अपूर्व योगदान दिया है । महिमभट्ट के पूर्ववर्ती होने के कारण कुन्तक का काल दशम शताब्दी का अन्तिम भाग मानना होगा। कश्मीर में महाराज जयापीड का शासनकाल 779 ई0 से लेकर 813 ई0 तक माना जाता है।

इसलिए उद्भट का समय भी आठवीं शताब्दी का अन्तिम तथा नवम शताब्दी का प्रारम्भिक भाग है।'रीतिरात्मा काव्यस्य' लिखकर वामन नें रीति को काव्य की आत्मा माना है। इस सिद्धान्त के कारण इनका साहित्य शास्त्र के इतिहास में विशेष महत्त्व है।

वामन का एकमात्र ग्रन्थ 'काव्यालङ्कारसूत्र' है। अलङ्कार शास्त्र पर यह एक ऐसा ग्रन्थ है जो सूत्र शैली में लिखा गया है। यह ग्रन्थ पाँच अधिकरणों में विभक्त है। प्रत्येक अधिकरण दो या तीन अध्यायों में विभक्त किया गया है। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में बारह अध्याय हैं। इन बारहों अध्यायों में मिलाकर सूत्रों की संख्या 312 है।अतः इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप उद्भट्ट, वामन, कुन्तक के जीवन वृत्त व समय, कृतित्त्व पर पर प्रकाश डालते हुए इनकी ऐतिहासिकता बता सकेंगे ।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
वेदिता	जानकर
सर्वशास्त्राणाम्	सभी शास्त्रों का
लब्ध्वा	प्राप्तकर
कुतश्चिदादर्शम्	कही आदर्श को
भ्रष्टाम्नाय	भ्रष्ट समूह को
समुद्धृतम्	अच्छी प्रकार से धारण किया
काव्यालङ्कारशास्त्रम्	काव्यालङ्कार शास्त्रों का
तेनैतद्वामनोदितम्।	इस प्रकार वामन के द्वारा कहा गया
असूया	कष्ट से
तन्न कर्तव्या	ऐसा नही करना चाहिये

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.उत्तर - आचार्य भट्टोद्भट ने अलङ्कारशास्त्र के ऊपर महत्त्वपूर्ण कार्य किया

2.उत्तर - भट्ट उद्भट, कौन से कश्मीरी ब्राह्मण थे।

3.उत्तर - भट्ट उद्भट, राजा जयादित्य की राजसभा के सभापति थे।

4.उत्तर - कश्मीर में महाराज जयापीड का शासनकाल 779 ई0 से लेकर 813 ई0 तक माना जाता है।

5.उत्तर - उद्भट्ट की तीन कृतियाँ प्रसिद्ध हैं।

2.7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1.संस्कृत साहित्य का इतिहास,बलदेव उपाध्याय,प्रकाशक, शारदा निकेतन,वी, कस्तूरवानगर ,वाराणसी ।

2. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट,विश्वेश्वर कृत हिन्दी व्याख्या सहित,चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी।

2. 8 उपयोगी पुस्तकें

1 .संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास. पी0वी0 काणे .काव्यमाला सिरीज

2. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कुन्तक का परिचय देकर उनके सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
2. साहित्यशास्त्र के इतिहास में भट्टोद्भट का मूल्यांकन कीजिए।
3. रीतिरात्मा काव्यस्य के प्रतिपादक का परिचय दीजिए।

इकाई. 3 मम्मट, विश्वनाथ ,आनन्दवर्धन का जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मम्मट, विश्वनाथ एवं आनन्दवर्धन का जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 उपयोगी पुस्तकें

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1.प्रस्तावना

काव्यशास्त्र से सम्बन्धित खण्ड चार की यह तीसरी इकाई है। इस इाकई के अध्ययन से आप बता सकते है कि 'काव्यप्रकाश' के कर्ता के रूप में साधारणतः मम्मट ही प्रसिद्ध हैं। भोजराज के बाद मम्मटाचार्य का काल आता है। अलङ्कार साहित्य के निर्माताओं की अब तक की धारा में दण्डी, राजशेखर और भोजराज के अतिरिक्त और सभी आचार्य कश्मीर निवासी थे। इसी प्रकार ये मम्मटाचार्य भी कश्मीर निवासी हैं यह बात उनके नाम से ही प्रतीत होती है।

विद्यानाथ के बाद विश्वनाथ कविराज का नाम आता है। इनका अलङ्कारशास्त्र विषयक 'साहित्यदर्पण' ग्रन्थ बड़ा लोकप्रिय है। उसके अन्तिम श्लोक में उन्होंने अपने को 'श्रीचन्द्रशेखरमहाकविचन्द्रसूनुः' कहा है, जिससे पता चलता है कि इनके पिता का नाम चन्द्रशेखर था। आनन्दवर्धनाचार्य साहित्य शास्त्र के प्रमुख ध्वनि सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक होने के नाते साहित्य शास्त्र के अत्यन्त प्रसिद्ध एवं प्रमुखतम व्यक्ति हैं। पूर्ववर्ती अन्य आचार्यों के समान यह भी कश्मीर के निवासी हैं।

अतः इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप मम्मट, विश्वनाथ एवं आनन्दवर्धन के जीवन वृत्त, समय, व कृतित्त्व पर विस्तार से वर्णन प्रस्तुत कर सकेंगे ।

3.2 उद्देश्य -

मम्मट, विश्वनाथ एवं आनन्दवर्धन जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व के वर्णन से सम्बद्ध इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- मम्मट के व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में बतायेंगे ।
- विश्वनाथ का समय व साहित्यशास्त्र में योगदान बता सकेगें ।
- आनन्दवर्धन के व्यक्तित्व के काल और योगदान का निरूपण कर सकेंगे ।
- इन सभी आचार्यों नें साहित्यशास्त्र के लिए क्या क्या किया है,यह भी समझा सकेंगे ।

3.1 मम्मट, विश्वनाथ एवं आनन्दवर्धन का जीवन वृत्त, समय,व कृतित्त्व

आचार्य मम्मट

अलङ्कार साहित्य के निर्माताओं की अब तक की धारा में दण्डी, राजशेखर और भोजराज के अतिरिक्त और सभी आचार्य कश्मीर निवासी थे। इसी प्रकार मम्मटाचार्य भी कश्मीर निवासी हैं यह बात उनकेनाम से ही प्रतीत होती है। परन्तु इनके जीवन वृत्तादि का और कुछ अधिक परिचय नहीं मिलता है। कश्मीरी पण्डितों की परम्परागत प्रसिद्धि के अनुसार मम्मट 'नैषधीयचरित' के रचयिता महाकवि श्रीहर्ष के मामा माने जाते हैं। किन्तु यह प्रवाद मात्र जान पड़ता है, क्योंकि महाकवि श्रीहर्ष स्वयं कश्मीरी नहीं थे। 'काव्यप्रकाश' की 'सुधासागर' टीका के निर्माता भमसेन ने मम्मट के परिचय के रूप में कुछ पद्य लिखे हैं, उनसे यह प्रतीत होता है कि

मम्मट कश्मीर देशीय जैयट के पूत्र थे। उन्होंने वाराणसी में जाकर विद्याध्ययन किया था। पतञ्जलि-प्रणीत 'महाभाष्य' के टीकाकार कैयट तथा यजुर्वेद भाष्यकार उव्वट दोनों मम्मट के छोटे भाई थे। इस भाव का वर्णन भीमसेन ने अपने श्लोकों में निम्नलिखित प्रकार किया है -

'शब्दब्रह्म सनातनं न विदितं शास्त्रैः क्वचित् केनचित्
तद्देवी हि सरस्वती स्वमभूत् काश्मीर-देशे पुमान्।
श्रीमज्जैयटगेहिनीसुजठराज्जन्माप्य युग्मानुजः
श्रीमन्मम्मटसंज्ञया श्रिततनुं सारस्वतीं सूचयन्।।
मर्यादां किल पालयन् शिवपुरीं गत्वा प्रपठ्यादरात्
शास्त्रं सर्वजनोपकाररसिकः साहित्यसूत्रं व्यधात्।
तत्वृत्तिं च विरच्य गूढमकरोत् काव्यप्रकाशं स्फुटं
वैदग्ध्यैकनिदानमर्थिषु चतुर्वर्गप्रदं सेवनात्।।
कस्तस्य स्तुतिमाचरेत् कविरहो को वा गुणान् वेदितुं
शक्तः स्यात् किल मम्मटस्य भुवने वाग्देवतारूपिणः।
श्रीमान् कैयट औव्वटो ह्यवरजौ यच्छात्रतामागतौ
भाष्याब्धिं निगमं यथाक्रममनुव्याख्याय सिद्धिं गतौ।।'

मम्मट का जन्म 'जैयटगेहिनी' के सुजठर से हुआ था। अर्थात् वे जैयट के पुत्र थे और 'श्रीमान् कैरूट औव्वटौ ह्यवरजौ' कैयट और औव्वट उनके छोटे भाई थे, जिन्होंने 'भाष्याब्धिं निगमं यथाक्रममनुव्याख्याय' महाभाष्य तथा वेदों पर व्याख्या लिखी थी। इस प्रकार मम्मट रूप में स्वयं सरस्वती देवी ने कश्मीर देश में पुरुष के रूप में अवतार लिया था और साहित्यशास्त्र पर सूत्रों का निर्माण, उस पर स्वयं काव्यप्रकाश-वृत्ति की रचना की थी।

यह विवरण सुधासागरकार भीमसेन ने मम्मटाचार्य के विषय में अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। किन्तु इसमें जो कैयट तथा औव्वट या उव्वट को मम्मट अनुज कहा है वह ठीक प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि उव्वट कृत वाजसनेय संहिता-भाष्य में उनका परिचय इस प्रकार मिलता है-

'आनन्दपुरवास्तव्यवज्रटाख्यस्य सूनुना।
मन्त्रभाष्यमिदं क्लृप्तं भोजे पृथ्वीं प्रशासति।।'

उव्वट द्वारा स्वयं प्रदत्त इस विवरण के अनुसार उव्वट के पिता का नाम 'वज्रट' है, 'जैयट' नहीं, और उनका वेदभाष्य भोजराज के शासनकाल में लिखा गया है। किन्तु मम्मट का समय भोजराज के समकाल नहीं अपितु उनके बाद पड़ता है क्योंकि मम्मट ने स्वयं दशम उल्लास में उदात्त अलङ्कार के उदाहरण रूप में जो पद्य दिया है उसमें अन्त में 'भोजनृपतेस्तत् त्यागलीलायितम्', वह सब भोजराज के दान का फल है, इस रूप में भोजराज के नाम का उल्लेख किया है। भोजराज का शासनकाल, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 996 ई0 से 1051 ई0 पर्यन्त माना जाता है। मम्मट उनके उत्तरवर्ती जान पड़ते हैं। किन्तु यदि कथञ्चित मम्मट को भोजराज का समकालीन भी मान लिया जाय तो भी उव्वट को उनका अनुज कहना कठिन है। हाँ कैयट को उनका अनुज माना

जा सकता है, क्योंकि कैयट भी 'कैयटो जैयटात्मजः' के अनुसार अपने को जैयट का पुत्र कहा है। किन्तु उव्वट तो वज्रट के पुत्र हैं। इसलिए उव्वट को मम्मट का अनुज बतलाने वाला भीमसेन का लेख सन्दिग्ध जान पड़ता है।

इसके अतिरिक्त 'शिवपुरीं गत्वा प्रपठ्यादरात्' लिखकर मम्मट को विद्याध्ययन के लिए कश्मीर से 'शिवपुरी' वाराणसी भेजा है। यह बात भी कुछ युक्तिसङ्गत प्रतीत नहीं होती। कश्मीर तो स्वयं विद्या का केन्द्र था। साहित्य शास्त्र के अब तक जितने आचार्य हुए थे, उनमें से दण्डी, राजशेखर और भोजराज को छोड़कर सभी आचार्य कश्मीर में ही उत्पन्न हुए थे। जो तीन आचाय्र कश्मीर से बाहर के थे, काशी के साथ उनका भी कोई सम्बन्ध नहीं था। साहित्यशास्त्र की दृष्टि से काशी का कोई विशेष महत्त्व उस समय नहीं था। इसलिए मम्मट के लिए कश्मीर को छोड़कर काशी आने का कों विशेष प्रयोजन या आकर्षण नहीं प्रतीत होता है। इन सब कारणों से भीमसेन का मम्मट विषयक उपर्युक्त परिचय अप्रामाणिक मालूम होता है। भीमसेन का यह लेख मम्मट के लगभग 600 वर्ष बाद सन् 1723 में लिखा गया है। इसलिए उसमें अधिकतर कल्पना से काम लिया गया है। उव्वट ने अपने ऋक्-प्रातिशाख्य में अपने को वज्रट का पुत्र लिखा है और वाजसनेय संहिताभाष्य में 'भोजे राज्यं प्रशासति' लिखा है; इन दोनों बातों से उव्वट का सम्बन्ध मम्मट से नहीं जुड़ता है।

'काव्यप्रकाश' के कर्ता के रूप में साधारणतः मम्मट ही प्रसिद्ध हैं। किन्तु वस्तुतः वे अकेले ही इस ग्रन्थ के निर्माता नहीं है। इसमें मम्मट के अतिरिक्त कश्मीर के विद्वान् 'अल्लर्ट' का भी सहयोग है। वह सहयोग कितने अंश में है इस विषय में कुछ मतभेद पाया जाता है, किन्तु 'काव्यप्रकाश' केवल अकेले मम्मट की रचना नहीं है, उसकी रचना में अल्लट का भी हाथ है, इस विषय में मतभेद नहीं है। अधिकांश टीकाकार इस बात में एकमत हैं। 'काव्यप्रकाश' के अन्त में एक श्लोक निम्नलिखित प्रकार दिया गया है -

'इत्येष मार्गो विदुषां विभिन्नोप्यभिन्नरूपः प्रतिभासते यत्।
न तद्विचित्रं यदमुत्र सम्यग्विनिर्मिता सङ्घटनैव हेतुः।।'

'काव्यप्रकाश' के सबसे पूर्ववर्ती टीकाकार माणिक्य चन्द्र ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है-**'अथ चायं ग्रन्थोन्येनारब्धोपरेण च समापित इति द्विखण्डोपि सङ्घटनावशादखण्डायते।'**इसी प्रकार 'काव्यप्रकाश' की 'सङ्केत' टीका के निर्माता रुचक ने इसकी व्याख्या में लिखा है-**'एतेन महामतीनां प्रसरणहेतुरेष ग्रन्थो ग्रन्थकृतानेन कथमप्यसमाप्तत्वादपरेण च पूरितावशेषत्वात् द्विखण्डोपि।'**इन दोनों टीकाकारों ने इस बात की ओर सङ्केत तो किया है कि ग्रन्थ का आरम्भ अन्य विद्वान् के द्वारा अर्थात् मम्मटाचार्य के द्वारा किया गया, किन्तु किसी कारण से वे इसको समाप्त नहीं कर सके, तब इसकी समाप्ति दूसरे विद्वान् के द्वारा की गयी। किन्तु दो निर्माताओं के द्वारा बनाये जाने पर भी यह ग्रन्थ अखण्ड-सा प्रतीत होता है। परन्तु इन टीकाकारों ने न तो स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख किया कि पूर्व ग्रन्थकार अर्थात् मम्मट ने ग्रन्थ का कितना भाग लिखा और दूसरे ग्रन्थकार ने कितना भाग लिखा

और न इस बात का ही सङ्केत किया कि वह दूसरा विद्वान्, जिसने अपूर्ण 'काव्यप्रकाश' को पूर्णता प्रदान की, कौन था। इन दोनों बातों का उल्लेख स्पष्ट रूप से सबसे पहिले 'काव्यप्रकाश निदर्शना' नामक टीका के निर्माता राजानक आनन्द ने (1685) निम्नलिखित प्रकार किया है-

'कृतः श्रीमम्मटाचार्यवर्यैः परिकरावधिः।

ग्रन्थः सम्पूरितः शेषं विधायाल्लटसूरिणा।।'

इस श्लोक से यह स्पष्ट हो जाता है कि मम्मटाचार्य ने परिकर अलङ्कारपर्यन्त 'काव्यप्रकाश' की रचना की, उसके बाद कदाचित् उनका देहावसान हो गया या किसी अन्य कारण से वे ग्रन्थ को समाप्त नहीं कर सके तो शेष ग्रन्थ की रचना 'अल्लट' या 'अलट' नाम के विद्वान् ने करके इस ग्रन्थ को पूरा किया। इस प्रकार की घटना 'कादम्बरी' ग्रन्थ के विषय में भी हुई है। 'कादम्बरी' के निर्माता बाणभट्ट कादम्बरी के केवल पूर्वार्द्धभाग की ही रचना कर सके थे। उसके बाद उसके उत्तरार्द्ध भाग की रचना उनके पुत्र ने की थी। इस प्रकार मम्मटाचार्य के इस अपूर्ण 'काव्यप्रकाश' की समाप्ति अल्लट या अलकसूरि ने की।

यह एक मत हुआ। इसके अनुसार दशम उल्लास के परिकर अलङ्कार तक के अधिकांश ग्रन्थ की रचना मम्मट ने की है। उनके बाद जो थोड़ा-सा भाग रह गया था उसकी पूर्ति अलकसूरि या अल्लटसूरि ने की थी। पर इसके अतिरिक्त एक दूसरा मत भी पाया जाता है। उसके अनुसार 'काव्यप्रकाश' का एक भाग मम्मटाचार्य का और दूसरा भाग अल्लटसूरि का लिखा हुआ है यह बात नहीं है अपितु सारा का सारा ग्रन्थ दोनों विद्वानों की सम्मिलित रचना है। जैसे 'नाट्यदर्पण' नामक ग्रन्थ की रचना रामचन्द्र और गुणचन्द्र दोनों ने मिलकर की है। सम्पूर्ण 'नाट्यदर्पण' गुणचन्द्र और रामचन्द्र की सम्मिलित कृति है। इसी प्रकार सम्पूर्ण 'काव्यप्रकाश' मम्मट और अल्लट की सम्मिलित कृति है। इस दूसरी मत का उल्लेख भी उसी 'काव्यप्रकाशनिदर्शना' टीका में राजानक आनन्द ने अन्यों के मत को दिखलाते हुए निम्नलिखित प्रकार किया है -

'अन्येनाप्युक्तम्-

काव्यप्रकाशदशकेपि निबन्धकृद्भ्यां

द्वाभ्यां कृतेपि कृतिनां रसवत्त्वलाभः।'

श्री भण्डारकर ने संवत् 1215 (सन् 1118) में लिखी गयी 'काव्यप्रकाश' की एक पाण्डुलिपि के अन्त में पुष्पिका में 'इति राजानकमम्मटालकयोः' इस प्रकार का लेख पाया है। इससे भी सम्पूर्ण 'काव्यप्रकाश' मम्मट तथा अल्लट दोनों की सम्मिलित रचना है इस मत की पुष्टि होती है। 'अमरुक-शतक' की टीका में उसके निर्माता अर्जुन वर्मदेव ने भी इसी मत की पुष्टि की है। उन्होंने 'भवतु विदितं' इत्यादि श्लोक की व्याख्या में पृष्ठ 29 पर लिखा है - 'यथोदाहृतं दोषनिर्णये मम्मटालकाभ्याम्-''प्रसादे वर्तस्व'' इत्यादि'। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे न केवल परिकरालङ्कार के बाद वाले भाग को ही अलक-विरचित मानते हैं अपितु सप्तम उल्लास को भी अर्थात सारे ग्रन्थ को ही दोनों की सम्मिलित कृति मानते हैं। 'अमरुकशतक' के टीकाकार अर्जुन वर्मदेव ने एक जगह और इसी बात का उल्लेख किया है। 'लीलातामरसाहत' आदि

('काव्यप्रकाश' उदाहरण संख्या 238) 'अमरुकशतक' का बड़ा सुन्दर श्लोक है। इसमें 'वायु' पद आया है। 'काव्यप्रकाश' ने उस 'वायु' पद को जुगुप्साव्य ्जक अश्लीलता का उदाहरा मानकर इस श्लोक को अश्लीलता के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है। इस पर टिप्पणी करते हुए अर्जुन वर्मदेव ने लिखा है -

'अत्र केचिद् वायुपदेन जुगुप्साश्लीलमिति दोषमाचक्षते। ... तदा वाग्देवतादेश इति व्यवसितव्य एवासौ। किन्तु ह्लादैकमयीवरलब्धप्रसादौ काव्यप्रकाशकारौ प्रायेण दोषदृष्टी।'

इसमें भी 'काव्यप्रकाशकारौ' यह द्विवचन का उल्लेख यह बतलाता है कि अर्जुन वर्मदेव की दृष्टि में 'काव्यप्रकाश' का सम्पूर्ण भाग मम्मट तथा अल्लट दोनों विद्वानों की सम्मिलित रचना है। 'अमरुकशतक' के टीकाकार अर्जुनवर्मदेव मालवाधीश और धारा नगरी के राजा भोजराज (जिनका उल्लेख पहिले किया जा चुका है) के वंशधर हैं। वे भोज के बआद धारा के राजसिंहासन को अलङ्कृत करने वाले 13वें राजा थे। 1211 से लेकर 1216 ई0 तक के उनके शिलालेख पाये जाते हैं, अर्थात् ये काव्यप्रकाशकार के लगभग 100 वर्ष बाद हुए हैं।

'काव्यप्रकाश' की 'सङ्केत' टीका के प्रथम तथा दशम उल्लास के अन्त की पुष्पिकाओं में एक और सङ्केत मिलता है। इसके प्रथम उल्लास के अन्त की और दशम उल्लास के अन्त की पुष्पिकाएँ निम्नलिखित प्रकार हैं -

'इति श्रीमद्राजानकमल्लमम्मटरुचकविरचिते निजग्रन्थकाव्यप्रकाशसङ्केते प्रथम उल्लासः।'इसमें 'काव्यप्रकाश' के निर्माता रूप में राजानक मल्ल (अलक के स्थान पर), मम्मट और रुचक तीन नाम दिये हैं। इसी प्रकार दशम उल्लास की पुष्पिका में फिर 'राजानकमम्मट-अलक-रुचकानाम्' इन्हीं तीन नामों का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि 'सङ्केत' टीका के निर्माता रुचक 'काव्यप्रकाश' को दो की नहीं, तीन की कृति मानते हैं। पर यह बात नहीं है। रुचक ने इस स्थल पर 'काव्यप्रकाश' मूल ग्रन्थ के साथ अपनी 'सङ्केत' टीका को भी सम्मिलित करके पुष्पिकाएँ दी हैं। इसलिए 'काव्यप्रकाश' के मम्मट तथा अलक निर्माताओं के साथ टीकाकार के रूप में अपने नाम का भी समावेश कर दिया है। यहाँ ग्रन्थकार जिस ग्रन्थ की पुष्पिका लिख रहे हैं वह ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' ग्रन्थ नहीं अपितु 'काव्यप्रकाशसङ्केत' ग्रन्थ है। उसके तीन रचयिता हो जाते हैं, 'काव्यप्रकाश' के नहीं। इसलिए 'काव्यप्रकाश' के विषय में युग्मकर्तुत्ववाला सिद्धान्त प्रायः सर्वसम्मत सिद्धान्त माना जाता है।

कारिकाकर्तृत्व का निर्णय—

'काव्यप्रकाश' के युग्मकर्तृत्व-सिद्धान्त के दो पक्ष हमने ऊपर बताया। इनमें से एक पक्ष के अनुसार 'काव्यप्रकाश' का प्रारम्भ से लेकर परिकरालङ्कार तक का भाग मम्मटक का और शेष अन्तिम भाग अलकसूरि का लिखा हुआ है। दूसरे मत के अनुसार सारा का सारा 'काव्यप्रकाश' मम्मट तथा अलकसूरि की सम्मिलित रचना है। इस प्रकार 'काव्यप्रकाश' के युग्मकर्तृत्व विषयक ये दो सिद्धान्त बनते हैं। इसी प्रसङ्ग में एक और तीसरा सिद्धान्त भी है। वह भी 'काव्यप्रकाश' को दो व्यक्तियों की रचना मानता है। किन्तु उसकी विचारशैली भिन्न प्रकार की है। 'ध्वन्यालोक',

'व्यक्तिविवेक' आदि अन्य सभी ग्रन्थों के समान 'काव्यप्रकाश' में तीन भाग हैं - 1. कारिकाभाग, 2. वृत्तिभाग और 3. उदाहरणभाग। 'काव्यप्रकाश' के उदाहरण सब विभिन्न प्रसिद्ध काव्यों से लिये गये हैं इसलिए उनके कर्तृत्व के विषय में कोई विवाद नहीं है। किन्तु कारिका भाग और वृत्ति भाग की रचना के विषय में दो प्रकार के मत पाये जाते हैं। कुछ लो इन दोनों भागों के कर्ता अलग-अलग मानते हैं। उनके मतानुसार कारिका भाग के निर्माता भरतमुनि हैं और वृत्ति भाग के निर्माता मम्मटाचार्य हैं। दूसरे लोग कारिका भाग तथा वृत्तिभाग दोनों का निर्माता एक ही मम्मटाचार्य को मानते हैं।कारिका तथा वृत्ति भाग का भिन्नकर्तृकत्व बताने वाला पूर्वपक्षकारिका भाग तथा वृत्तिभाग दोनों के निर्माता अलग-अलग हैं इस सिद्धान्त का उदय बङ्ग देश में हुआ। साहित्यकौमुदीकार विद्याभूषण तथा 'काव्यप्रकाश' की 'आदर्श' टीका के निर्माता महेश्वर ने 'काव्यप्रकाश' के कारिका भाग का निर्माता भरतमुनि को माना है। विद्याभूषण ने 'साहित्यकौमुदी' में दो बार इस बात का उल्लेख किया है जो निम्नलिखित प्रकार है -

'मम्मटाद्युक्तिमाश्रित्य मितां साहित्यकौमुदीम्।
वृत्तिं भरतसूत्राणां श्रीविद्याभूषणो व्यधात्।।

इसमें विद्याभूषण ने 'काव्यप्रकाश' के सूत्रों को भरतसूत्र कहा है। दूसरी जगह उन्होंने फिर लिखा है -

'सूत्राणां भरतमुनीशवर्णितानां वृत्तीनां मितवपुषां कृतौ ममास्याम्।'

इन लेखों से विदित होता है कि साहित्यकौमुदी का विद्याभूषण के मत में 'काव्यप्रकाश' के सूत्र भरतमुनि-विरचित हैं। इसी प्रकार 'आदर्श' व्याख्या के निर्माता महेश्वर ने (जीवानन्द संस्करण पृ0 3 पर) 'काव्यप्रकाश' के सूत्रों को भरत निर्मित तथा वृत्ति भाग को मम्मटाचार्य कृत माना है।

इसके विपरीत जयराम ने अपनी 'तिलक' नामक 'काव्यप्रकाश' की टीका में इस मत का खण्डन किया है। उन्होंने पहिले पूर्वपक्ष के रूप में सूत्रों को भरत कृत मानने वालों का पक्ष रखा है, फिर उसका खण्डन कर सूत्र तथा वृत्ति दोनों भागों का निर्माता मम्मट को ही सिद्ध किया है। 'काव्यप्रकाश' के सूत्र भाग को भरतमुनि कृत मानने वाले लोग अपने पक्ष के समर्थन में प्रायः तीन युक्तियाँ देते हैं।

उनकी पहली युक्ति यह है कि 'काव्यप्रकाश' में रसनिरूपण के विषय में जो सूत्र आये हैं वे स्पष्ट रूप से भरतमुनि के सूत्र हैं। 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' यह स्पष्ट ही भरतसूत्र है। इसके अतिरिक्त 'शृंङ्कार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः' इत्यादि सूत्र संख्या 44, जिसमें कि रसों के नाम गिनाये जाते हैं, 'रतिहसिश्च शेकश्च' इत्यादि सूत्र संख्या 45, जिसमें स्थायि भावों के नाम दिये गये हैं और 'निर्वेदग्लानिशङ्का' इत्यादि सूत्र संख्या 46, जिसमें व्यभिचारि भावों के नामों का निर्देश किया गया है ये सब भरतमुनि के सूत्र हैं। ये तीनों सूत्र भरतनाट्य-शास्त्र के छठे अध्याय में क्रमशः 14, 17 तथा 21 संख्या वाले हैं।

भेदवादियों की दूसरी युक्ति यह है कि 'काव्यप्रकाश' की प्रथम कारिका की वृत्ति आरम्भ करते समय ग्रन्थकार ने - 'ग्रन्थारम्भे विध्नविघाताय समुचितेष्टदेवतां ग्रन्थकृत् परामृशति' यह प्रथम

पुरुष का प्रयोग किया है। इससे प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार मम्मट जिस कारिका की व्याख्या करने जा रहे हैं उसका बनाने वाला उनसे भिन्न कोई दूसरा व्यक्ति है। तभी उसके लिए 'परामृशति' इस प्रथम पुरुष का प्रयोग बनता है। अन्यथा यदि वे अपनी बनायी कारिकाओं की स्वयं ही व्याख्या लिख रहे होते तो इस प्रकार प्रथम पुरुष का प्रयोग न कर के उत्तम पुरुष का प्रयोग करते। ऐसा नहीं किया है। इससे यही सिद्ध होता है कि कारिका कार भरतमुनि ही हैं।

तीसरी युक्ति यह है कि दशम उल्लास में रूपक के निरूपण में 'समस्तवस्तुविषयं श्रौता आरोपिता यदा' यह सूत्र (संख्या 139) आया है। इस सूत्र की व्याख्या में मम्मट ने लिखा है - 'बहुवचनमविवक्षितम्' अर्थात् बहुवचन के स्थान पर द्विवचन भी हो सकता है। भेदवादियों का कहना है कि यदि कारिका भाग के निर्माता मम्मट स्वयं ही होते तो पहिले सूत्रभाग में 'आरोपिताः' इस बहुवचन का प्रयोग कर के फिर स्वयं उसकी व्याख्या में 'बहुवचनमविवक्षितम्' ऐसा लिखने की क्या आवश्यकता थी। वे कारिका में स्वयं ही 'श्रोतावारोपितौ यदा' पाठ रख सकते थे। पर क्योंकि सूत्रभाग मम्मट का बनाया हुआ नहीं है, भरत का बनाया हुआ है, इसलिए उसकी व्याख्या में 'बहुवचनमविवक्षितम्' लिखा जाना सङ्गत हो सकता है।

मूल्याङ्कन—

वाग्देवतावतार मम्मट और उनके ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' ने अलङ्कार शास्त्र के क्षेत्र में बड़ा गौरव तथा आदर प्राप्त किया है। उस गौरव का कारण ग्रन्थ की अपनी विशेषताएँ हैं। 'काव्यप्रकाश' की सबसे बड़ी विशेषता, जिसके कारण उसको इतना अधिक गौरव प्राप्त हुआ और उसका इतना अधिक प्रचार हो सका, उसकी सूत्रशैली और विषय-बाहुल्य है। मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' में संक्षेप में काव्यशास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले सारे विषयों का प्रतिपादन बड़े सुन्दर रूप में कर दिया है। भरतमुनि से लेकर भोजराज तक लगभग 1200 वर्षों में अलङ्कार शास्त्र के विषय में जिस विशाल साहित्य का निर्माण हुआ उसका दिग्दर्शन हम ऊपर करा चुके हैं। मम्मट ने इस सारे विशाल साहित्य का मन्थन कर उसका सारभूत जो 'नवीनतम' प्राप्त किया वह 'काव्यप्रकाश' है। अलङ्कार शास्त्र की दृष्टि से भरत के नाट्यशास्त्र का नवनीत है रस सिद्धान्त। भरतमुनि का रस सूत्र और उस पर गत 1200 वर्षों में जो कुछ ऊहापोह हुआ है उस सब का सार 'काव्यप्रकाश' में सुन्दर रूप में उपस्थित है। भामह का 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' वाला काव्यलक्षण और अधिक निर्दुष्ट, और अधिक सगुण, और अधिक अलङ्कृत, और परिमार्जित कर दिया है। भामह और दण्डी ने शब्द शक्तियों का विवेचन किया है, न रस औ ध्वनि का। इसलिए वे आज के अलङ्कारशास्त्र की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करते और विषय प्रतिपादन की दृष्टि से अपूर्ण हैं। मम्मट ने भामह और दण्डी की इस कमी को समझा और 'काव्यप्रकाश' में इन विषयों का समावेश कर के उस कमी को दूर करने का यत्न किया। उ॒ट तो 'अलङ्कार सारसंग्रह' में ही रम गये हैं। गिने-चुने 41 अलङ्कारों के निरूपण के अतिरिक्त उनके पास काव्यशास्त्र का और कोई तत्त्व नहीं है। वामन रीति पर रीझ रहे हैं। उन्होंने यद्यपि गुण, दोष और अलङ्कारों का भी वर्णन किया है, किन्तु काव्य के आत्मभूत रस की नितान्त उपेक्षा कर दी है और रीति को असाधारण

गौरव प्रदान कर दिया है। वे साहित्यिक तत्त्वों का यथार्थ मूल्याङ्कन नहीं कर सके हैं। मम्मट ने रीति, गुण, दोष और अलङ्कार सबका यथार्थ मूल्याङ्कन किया है और सबको अपनी योग्यता के अनुरूप स्थान दिया है। यह उनकी बड़ी विशेषता है। वामन के बाद रुद्रट आते हैं, पर वे भी काव्यलक्षण, शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार के विवेचन में लगे हुए हैं। दस प्रकार के रस और नायक-नायिका भेद का वर्णन इन्होंने अवश्य किया है किन्तु उसके बाद भी साहित्य शास्त्र के अनेक अङ्ग छूट जाते हैं; शब्दशक्ति, ध्वनि आदि के विवेचन के बिना साहित्यिक गन्थ पूर्ण नहीं कहा जा सकता। रुद्रट के बाद आनन्दवर्धन आते हैं। आनन्दवर्धन सचमुच ही आनन्दवर्धन हैं। उन्होंने ध्वनि तत्त्व का ऐसा विशद और प्राञ्जल विवेचन उपस्थिति किया है कि सहृदयों का हृदय आनछनोल्लास से परिपूर्ण हो उठता है। पर अकेली मिठाई से ही तो कम नहीं चलता। भगवान् ने तो मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त षड्रस बनाये हैं। उन सबकी विविधता आस्वाद विशेष की उत्पन्न करती है। आनन्दवर्धन में वह विविधता कहाँ है ? उनका तो सब कुछ ध्वनि पर केन्द्रित हो रहा है। इसलिए वे भी साहित्य शास्त्र का समग्र चित्र अपने 'ध्वन्यालोक' में प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। काव्यप्रकाशकार ने तो 'ध्वन्यालोक' का सारा तत्त्वांश बड़े सुन्दर रूप में अपने ग्रन्थ में उपस्थित कर दिया है। या यों कहिये कि मम्मट ने आनन्दवर्धन को पुनः प्राणदान किया है अन्यथा ध्वनि विरोध भट्टनायक और महिमभट्ट ने मिलकर उनके ध्वनि सिद्धान्त को कुचल ही डाला था। यह तो मम्मट का ही सामर्थ्य था कि इस उग्र सङ्घर्ष के बीच से वे ध्वनि सिद्धान्त को बचा कर निकाल लाये हैं और अब वह सिद्धान्त 'ध्वन्यालोक' से भी अधिक सुन्दर रूप में और अधिक पुष्ट आधार पर 'काव्यप्रकाश' में उपस्थित है। इसीलिए मम्मटाचार्य को 'ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्य' कहा जाता है।

आनन्दवर्धन के बाद अभिनव गुप्त आते हैं। वे बड़े उ˘ट विद्वान् और प्रौढ़ लेखक थे। 'ध्वन्यालोकलोचन' और 'अभिनवभारती' दोनों साहित्य शास्त्र के लिए बड़ी देन हैं। परन्तु वे दोनों मिलकर भी साहित्य को पूर्ण नहीं कर रही हैं। काव्य के आवश्यक अङ्ग - दोष और अलङ्कारों का विवेचन उनमें नहीं है। इसलिए वे अलङ्कार शास्त्र की दृष्टि से अपूर्ण और एकदेशी ही कहे जा सकते हैं। 'काव्यप्रकाश' ने उनकी इस अपूर्णता को पूर्ण किया है। 'लोचन' में अभिनव गुप्त ने ध्वनि सिद्धान्त का उद्धार करने का यत्न किया है और 'अभिनवभारती' में नाट्यशास्त्र का। अलङ्कार शास्त्र की दृष्टि से उनका जो सारभूत तत्त्व है वह सब 'काव्यप्रकाश' में उपस्थित है। इसलिए 'काव्यप्रकाश' इनकी अपेक्षा अधिक परिपूर्ण है और साहित्यिक आवश्यकता को अधिक सुन्दरता के साथ शान्त करने वाला है। इनके बाद राजशेखर आते हैं। यह तो बस 'मुरारेस्तृतीयः पन्थाः' हैं। 'काव्यमीमांसा' साहित्य शास्त्र का विवेचन करने वाली होने पर भी अब तक की सारी विचार धारा से बिलकुल भिन्न है। इसलिए उपयोगी होने पर भी वह अलङ्कार शास्त्र विषयक जिज्ञासा की निवृत्ति में प्रायः असमर्थ है। अगले मुकुलभट्ट हैं। इनका 'अभिधावृत्तिमातृका' ग्रन्थ केवल शब्दशक्ति से सम्बन्ध रखता है। अलङ्कार शास्त्र के अन्य अङ्गों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने उसकी उपेक्षा नहीं की है।

साहित्य शास्त्र के एक आवश्यक भाग की पूर्ति उसके द्वारा होती है इसलिए उसका भी सारांश उन्होंने बड़े सुन्दर रूप में अपने ग्रन्थ में उपस्थित किया है। कुन्तक, क्षेमेन्द्र और भोजराज के सिद्धान्तों का भी यथार्थ मूल्याङ्कन कर उनका समुचित रूप में 'काव्यप्रकाश' में समावेश किया गया है और ध्वनि विरोधी महिमभट्ट को तो खूब मजा चखाया है। उनकी ध्वनि विरोधी युक्तियों की ऐसी छीछालेदर की है कि अब वह बिचारा सिकुड़-सिकुड़ाकर अपने 'व्यक्तिविवेक' के भीतर ही समा गया है, उसके बाहर उसका कहीं कोई आदर नहीं है। जिस ध्वनि सिद्धान्त को मिटा डालने का व्यक्तिविवेककार ने सङ्कल्प किया था, मम्मट की कृपा से वह अब पहले की अपेक्षा भी अधिक सुन्दर तथा सुदृढ़ सिद्धान्त के रूप में उपस्थित है।

आचार्य मम्मट की प्रतिभा, उनकी विशेषता और साहित्य शास्त्र के प्रति की गयी उनकी सेवा का मूल्याङ्कन एक सहस्र वर्ष से भी अधिक लम्बे काल में फैले हुए साहित्य शास्त्र के सिंहावलोकन के बिना नहीं यिका जा सकता है। इसलिए हमने बहुत संक्षेप में विगत एक सहस्र वर्षों की साहित्यिक, प्रवृत्तियों का विश्लेषण कर यह दिखलाने का यत्न किया है कि काव्यप्रकाश ने इन एक सहस्र वर्षों में साहित्योद्यान में खिले हुए समस्त पुष्पों का मधुसञ्चय करके अपने इस 'काव्यप्रकाश' ग्रन्थ का निर्माण किया है। यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता है जिसके कारण उनको और उनके ग्रन्थ को इतना अधिक आदर प्राप्त हुआ है। 'काव्यप्रकाश' में अपने पूर्ववर्ती सारे अलङ्कार शास्त्रियों के गुणों सारी उत्तम बातों का एक साथ संग्रह कर दिया गया है और उनमें जो त्रुटियाँ या न्यूनताएँ थीं, उनको दूर कर एक सर्वाङ्गपूर्ण साहित्य ग्रन्थ उपस्थित करने का प्रयत्न मम्मट ने किया है। इसीलिए 'काव्यप्रकाश' इतना सारगर्भित, महत्त्वपूर्ण एवं उपादेय ग्रन्थ बन गया है कि उस एक ही ग्रन्थ का अध्ययन कर लेने से साहित्य शास्त्र का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए 'काव्यप्रकाश' वस्तुतः एक महती रचना है।

किसी भी महती कृति के लिए श्रम और कला दोनों की आवश्यकता होती है। मधुमक्षिका विविध पुष्पों का मधुञ्चय करके लाती है यह उसका श्रम पक्ष है। पर उसको अपने छत्ते में किस प्रकार सजाकर, संभालकर रखती है यह उसका कला पक्ष है। मधुमक्खी के छत्ते की रचना उसके मधु से कम आनन्ददायक नहीं है। मधु रसना को तृप्त करता है तो छत्ता दृष्टि को। दोनों का अपना सौन्दर्य है, दोनों की अपनी उपयोगिता है और दोनों की अपनी कला है। मधुमक्षिका का यह श्रम और वह कलात्मक प्रवृत्ति दोनों ही सराहना प्राप्त करती हैं। 'काव्यप्रकाश' की मधुमक्षिका-मम्मट-की भी यही स्थिति है। उन्होंने एक सहस्र वर्ष के दीर्घकाल में फैले हुए विस्तीर्ण, साहित्योंद्यान के सैकड़ों सुन्दर पुष्पों से मधुसञ्चय करने में जो श्रम किया है वह उनकी कलात्मक प्रवृत्ति का परिचायक है। 'काव्यप्रकाश' में दस उल्लास हैं। उनमें प्रतिपाद्य विषय या सञ्चित मधु को इस प्रकार सजाकर रखा गया है कि बस देखते ही बनता है। सारा 'काव्यप्रकाश' 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि' इस एक सूत्र के ऊपर घूम रहा है। इस सूत्र में आया हुआ 'तत्' पद काव्य का वाचक है। 'काव्यं यशसेर्थकृते' इत्यादि, काव्य प्रयोजनों का प्रतिपादन करने वाली पहली कारिका के प्रारम्भ में'काव्यम्' यह संज्ञा पद आया है। उसके परामर्शक रूप में 'तददोषौ

शब्दार्थौ' में 'तत्' यह सर्वनाम प्रयुक्त हुआ है। इसलिए 'तत्' यह सर्वनाम 'काव्यम्' का ग्राहक है। इसलिए पहिले उल्लास में काव्य का लक्षण करने के बाद उसके ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य और चित्रकाव्य रूप तीन भेद भी दिखलाये हैं। इसके बाद 'शब्दार्थौ' पद के स्पष्टीकरण के लिए द्वितीय उल्लास में वाचक, लक्षक, व्यञ्जक तीन प्रकार के शब्द तथा वाच्य, लक्ष्य, व्यङ्ग्î तीन प्रकार के अर्थों का वर्णन किया गया है। शब्द में जो अर्थ की प्रतीति होती है वह शब्द की शक्ति द्वारा ही होती है इसलिए तीन प्रकार के शब्दों से तीन प्रकार के अर्थों को बोधित करने वाली अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना तीनों प्रकार की शब्द शक्तियों का भी निरूपण इसी उल्लास में कर दिया है। प्रथम उल्लास में काव्य के भेदों का केवल सामान्य वर्णन किया था, उनके स्पष्टीकरण के लिए कुछ विशेष वर्णन की आवश्यकता थी। अतः चौथे, पाँचवे तथा छठे उल्लाव में क्रमशः ध्वनिकाव्य, गुणीभूतव्यङ्ग्यकाव्य और चित्रकाव्य का विशेष वर्णन किया गया है। ध्वनिकाव्य के भीतर रसध्वनि का समावेश या मुख्यता होने के कारण चौथे उल्लास में ध्वनि काव्य के निरूपण के साथ ही इसका निरूपण भी कर दिया गया है। इसके पहिले तीसरे उल्लास में आर्थी व्यञ्जन का वर्णन किया है। काव्यप्रकाशकार 'ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्य' कहलाते हैं। उद्भट और महिमभट्ट की उक्तियों का खण्डन कर के ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना करने में उनको बड़ा परिश्रम करना पड़ा है। इसलिए ध्वनि का विषय काफी विस्तृत भी हो गया है। द्वितीय उल्लास में अभिधा और लक्षणा के अतिरिक्त व्यञ्जना के केवल शाब्दी व्यञ्जना भेद का निरूपण किया था। इसलिए व्यञ्जना के दूसरे भेद आर्थी व्यञ्जना का निरूपण तृतीय उल्लास में किया गया है और पञ्चम उल्लास में गुणीभूव्यङ्ग्î काव्य के भेदों तथा उदाहरणों को दिखलाने के बाद फिर व्यञ्जना की सिद्धि का यत्न किया गया है। द्वितीय तथा तृतीय उल्लास में केवल व्यञ्जना के भेद दिखलाये गये थे और उनके उदाहरण दिये गये थे, अन्य मतों का खण्डन करके ध्वनि सिद्धान्त की स्थापना का प्रयत्न वहाँ नहीं किया गया था। ध्वनि तथा गुणीभूतव्यङ्ग्î दोनों प्रकार के व्यञ्जनाश्रित काव्य के भेदों तथा उदाहरणों का निरूपण करने के बाद उ˜ट आदि साहित्यिकों, महिमभट्ट आदि नैयायिकों, मुकुलभट्ट आदि मीमांसकों, वैयाकरणों और वेदान्तियों, सब व्यञ्जना-विरोधी मतों का खण्डन करके बड़ी विद्वत्ता के साथ व्यञ्जनावृत्ति की सत्ता पञ्चम उल्लास के अन्त में विस्तार के साथ सिद्ध की गयी है। इसके बाद काव्य लक्षण में 'अदोषौ', 'सगुणौ' और 'अनलङ्कृती पुनः क्वापि' पद व्याख्या के लिए शेष रह जाते हैं। इनकी व्याख्या के लिए ग्रन्थकार ने सात से लेकर दस तक चार उल्लास लिखे हैं। सप्तम उल्लास में दोषों का, अष्टम उल्लास में गुणों का, उनके साथ ही रीति तथा वृत्तियों का, नवम तथा दशम दो उल्लासों में अलङ्कारों का वर्णन किया है। नवम उल्लास में केवल शब्दालङ्कार तथा उभयालङ्कार और दशम उल्लास में अर्थालङ्कारों का वर्णन किया है। इस प्रकार दस उल्लासों में ग्रन्थकार ने काव्यशास्त्र से सम्बद्ध सारे विषय को बड़ी सुन्दरता के साथ सजा दिया है। यह 'काव्यप्रकाश' की एक बड़ी विशेषता है जो उसको अन्य सब साहित्यिक ग्रन्थों की अपेक्षा उपादेय बनाती है। इस प्रकार 'काव्यप्रकाश' के गौरव और उपादेयता की वृद्धि

करने वाले और उसे अन्य सबकी अपेक्षा अधिक गौरव एवं आदर प्राप्त कराने वाले कारणों का संग्रह हम निम्नलिखित पाँच भागों में कर सकते हैं -

1.काव्यप्रकाशकार ने साहित्य शास्त्र के एक सहस्र वर्ष के समस्त आचार्यों की कृतियों का अवगाहन और मनन कर के उनके सर्वोत्तम सार भाग का संग्रह कर अपने इस ग्रन्थ में उपस्थित करने का यत्न किया है और अपने उस प्रयत्न में उन्होंने यथेष्ट सफलता प्राप्त की है।

2.पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रन्थों में विषय प्रतिपादन की दृष्टि से न्यूनता या त्रुटियाँ रह गयी थीं उन सबको हृदयङ्गम करके मम्मट ने अपने ग्रन्थ में उन सबको दूर कर विषय की दृष्टि से ग्रन्थ को सर्वाङ्ग सुन्दर एवं परिपूर्ण बनाने का यत्न किया है और उस यत्न में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

3.मम्मट ने साहित्यशास्त्र के शक्ति, ध्वनि, रस, गुण, दोष, अलङ्कार आदि समग्र आवश्यक तत्त्वों का यथार्थ मूल्याङ्कन किया है और उसी के अनुसार उनको अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है।

4.संक्षिप्त सूत्र शैली का अवलम्बन कर परिमित शब्दों में अधिक से अधिक विषय देने का यत्न किया है।

आचार्य विश्वनाथ—

विद्यानाथ के बाद विश्वनाथ कविराज का नाम आता है। इनका अलङ्कारशास्त्र विषयक ‘साहित्यदर्पण’ ग्रन्थ बड़ा लोकप्रिय है। उसके अन्तिम श्लोक में उन्होंने अपने को ‘श्रीचन्द्रशेखरमहाकविचन्द्रसूनुः‘ कहा है, जिससे पता चलता है कि इनके पिता का नाम चन्द्रशेखर था। इनके पितामह का नाम नारायण दास था। इन्होंने ‘काव्यप्रकाश’ के ऊपर टीका भी लिखी है। उसका उल्लेख ‘काव्यप्रकाश’ की टीकाओं के प्रसङ्ग में किया जा चुका है। इसमें उन्होंने अपने पितामह श्री नारायण दास का परिचय देते हुए लिखा है -

‘यदाहुः श्रीकलिङ्गभूमण्डलाखण्डलमहाराजाधिराजश्रीनरसिंहदेवसभायां धर्मदत्तं स्थगयन्तः ..... अस्मत्पितामहश्रीमन्नारायणदासपादाः’

‘साहित्यदर्पण’ में इन्हीं नारायण दास का उल्लेख इस प्रकार किया गया है - **‘तत्प्रवणत्वंचास्मद्वृद्धप्रपितामहसहृदयगोष्ठीगरिष्ठकविपण्डितमुख्यश्रीमन्नरायणपादैरुक्तम्।’**इन दोनों में विश्वनाथ ने नारायण दास के साथ अपना जो सम्बन्ध दिखलाया है वह एक-सा नहीं है। पहिली जगह उनको साक्षात् पितामह कहा है और दूसरी जगह ‘वृद्धप्रपितामहसहृदयगोष्ठीगरिष्ठ’ अर्थात् मित्रमण्डली के प्रमुख कहा है। इस विवरण से यह निकलता है कि यह कलिङ्ग के रहने वाले थे। ‘साहित्यदर्पण’ के प्रथम परिच्छेद के अन्त की पुष्पिका के अनुसार उन्होंने अपने को ‘सान्धिविग्रहिक’ और ‘अष्टादशभाषावारविलासिनीभुगङ्ग’ कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि वे 18 भाषाओं के ज्ञाता थे और किसी राज्य के ‘सन्धिविग्रहक’अर्थात् विदेशमन्त्री थे। किन्तु उस राज्य का कोई उल्लेख नहीं किया है।

‘साहित्यदर्पण’ के चतुर्थ परिच्छेद में ‘अल्लावदीननृपतौ न सन्धिर्न च विग्रहः’ (4-14) इन शब्दों में दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का उल्लेख पाया जाता है। अलाउद्दीन खिलजी का

शासनकाल 1296-1316 ई0 तक रहा है। उसने दक्षिणा भारत पर आक्रमण कर पिछले आचार्य विद्यानाथ के आश्रयदाता प्रताप रुद्र की राजधानी वारङ्गल (एकशिला) को जीत लिया था। उसका उल्लेख 'साहित्यदर्पण' में पाये जाने से विश्वनाथ का काल उसके बाद ही सम्भव है। इधर 'साहित्यदर्पण' की एक हस्तलिपि प्राप्त हुई है, उसका लेखनकाल सन् 1384 ई0 (सं0 1440) है। इसलिए विश्वनाथ का काल चौदहवीं शताब्दी स्थिर होता है।

विश्वनाथ का सबसे मुख्य और प्रसिद्धतम ग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' है। 'काव्यप्रकाश' के समान इसमें भी दस परिच्छेद हैं और इन परिच्छेदों में प्रायः उसी क्रम से विषय का विवेचन किया गया है। किन्तु इसकी अपनी विशेषता यह है इसके छठे परिच्छेद में, जो इसका सबसे बड़ा परिच्छेद है, नाट्यशास्त्र-सम्बन्धी सम्पूर्ण विषय का समावेश कर दिया गया है, जिससे काव्य तथा नाट्य-सम्बन्धी सम्पूर्ण विषयों का ज्ञान एक ही ग्रन्थ द्वारा प्राप्त हो जाने से ग्रन्थ की उपयिोगिता बढ़ गयी है। 'काव्यप्रकाश' में नाटक सम्बन्धी अंश नहीं है। प्रथम परिच्छेद में काव्य के प्रयोजन लक्षणादि प्रस्तुत करते हुए विश्वनाथ ने मम्मट के 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि' इस काव्य लक्षण का बड़े संरम्भ के साथ खण्डन किया है और उसके स्थान पर 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' को काव्य का लक्षण स्थापित किया है। द्वितीय परिच्छेद में वाक्य और पद का लक्षण करने के बाद अभिधा-लक्षणा-व्यञ्जनादि शब्द शक्तियों का विस्तार के साथ विवेचन किया है। तृतीय उल्लास में रसनिष्पत्ति का बड़ा सुन्दर विवेचन किया है। रसनिरूपण के साथ-साथ इसमें नायक नायिका भेद का प्रतिपादन किया है। यह विषय भी 'काव्यप्रकाश' में नहीं आया है। चतुर्थ परिच्छेद में काव्य के ध्पवनिकाव्य, गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य के भेदों का विवेचन किया है। पञ्चम परिच्छेद में ध्वनि सिद्धान्त के विरोधी समस्त मतों का खण्डन कर के ध्वनि सिद्धान्त का समर्थन बड़ी प्रौढ़ता के साथ किया है। इसलिए ग्रन्थकार परिच्छेदों के अन्त की पुष्पिकाओं में अपने को 'ध्वनिप्रस्थापनपरमाचार्य' लिखते हैं। छठे परिच्छेद में नाट्यशास्त्र-सम्बन्धी विषयों का प्रतिपादन है। इस प्रकार यह ग्रन्थ सर्वाङ्गपूर्ण बन गया है। ग्रन्थ की लेखनशैली बड़ी सरल और सुबोध है। 'काव्यप्रकाश' की-सी जटिलता इसमें कहीं नहीं है।

'साहित्यदर्पण' के लिखने के बाद विश्वनाथ ने 'काव्यप्रकाश' के ऊपर 'काव्यप्रकाशदर्पण' नामक टीका लिखी। इनके अतिरिक्त अनेक काव्यों की भी रचना की है, जिनमें 1. 'राघवविलास' संस्कृत का महाकाव्य है; 2. 'कुलवयाश्वचरित' प्राकृत भाषा में निबद्ध काव्य है; 3. 'प्रभावतीपरिणय' नाटिका; 4. 'चन्द्रकला' नाटिका; 5. 'नरसिंहविजय' काव्य तथा 6. 'प्रशस्तिरत्नावली' इन 6 काव्य तथा नाटकों का उल्लेख इन्होंने स्वयं 'साहित्यदर्पण' तथा 'काव्यप्रकाश' की टीका में किया है। इनमें से अन्तिम 'प्रशस्तिरत्नावली' सोलह भाषाओं में लिखा हुआ 'करम्भक' है।

आचार्य आनन्दवर्धन—

आनन्दवर्धनाचार्य साहित्य शास्त्र के प्रमुख ध्वनि सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक होने के नाते साहित्य शास्त्र के अत्यन्त प्रसिद्ध एवं प्रमुखतम आचार्य हैं। पूर्ववर्ती अन्य आचार्यों के समान यह

भी कश्मीर के निवासी हैं। राजतरङ्गिणीकार ने इन्हें कश्मीराधिपति अवन्ति वर्मा का समकालीन बतलाते हुए लिखा है -

'मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येवन्तिवर्मणः।।'-राजतरङ्गिणी 5-4

कश्मीर नरेश अवन्ति वर्मा का समय 855-884 ई0 तक है। इसलिए आनन्दवर्धनाचार्य का समय नवम शताब्दी में ठहरता है। आनन्दवर्धनाचार्य ने 1. 'विषमबाणलीला', 2. 'अर्जुनचरित', 3. 'देवीशतक', 4. 'तत्त्वालोक' तथा 5. 'ध्वन्यालोक' इन पाँच ग्रन्थों की रचना की थी। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' है। इस ग्रन्थ में काव्य के आत्मभूत ध्वनि-तत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। ग्रन्थ में चार 'उद्योत' हैं। कुछ लोग ध्वनि को मानते ही नहीं हैं, कुछ उसको गौण मानते हैं और कुछ उसको अनिर्वचनीय तत्त्व कहते हैं। ये तीन ध्वनि विरोधी सिद्धान्त हैं। इन तीनों सिद्धान्तों का खण्डन करके प्रथम उद्योत में ध्वनि की स्थापना की गयी है और उसका स्वरूप प्रतिपादन किया गया है-

'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व-
स्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।
केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयं
तेन ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम्।। - ध्वन्यालोक 1-1

द्वितीय उद्योत में अविवक्षितवाच्य अर्थात् लक्षणामूला ध्वनि तथा विवक्षितवाच्य अर्थात् अभिधामूला ध्वनि के भेदोपभोदों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है और उनके साथ गुणों का भी कुछ विवेचन किया गया है। तृतीय उद्योत में पदों, वाक्यों, पदांश और रचना आदि के द्वारा ध्वनि की प्रकाश्यता का प्रतिपादन और रसों के विरोध तथा अविरोधापादन के सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। चतुर्थ उद्योत में यह दिखलाया गया है कि ध्वनि तथा गुणीभूतव्यङ्ग्य के प्रयोग के प्रभाव से कवि के काव्य में अनन्त चमत्कार की उत्पत्ति हो जाती है। जैसे मधु मास में पुराने जीर्ण-शीर्ण वृक्षों में अनन्त सौन्दर्य छा जाता है उसी प्रकार ध्वनि तथा रस के सम्बन्ध से पूर्व कवियों द्वारा वर्णित पुराने अर्थों में भी नवीन चमत्कार उत्पन्न किया जा सकता है। इस प्रकार आनन्दवर्धनाचार्य ने इस ग्रन्थ में ध्वनि विरोधी पक्षों का निराकरण कर बड़ी सुन्दरता एवं प्रौढ़ता के साथ ध्वनि-सिद्धान्त की स्थापना की है।

'ध्वन्यालोक' में तीन भाग हैं। एक मूलकारिका-भाग, दूसरा उनकी वृत्ति और तीसराभाग उदाहरणरूप है। कारिका और वृत्ति दोनों भागों के निर्माता स्वयं आनन्दवर्धनाचार्य ही हैं। उदाहरणों में कुछ उदाहरण उन्होंने स्वयं अपने बनाये 'विषमबाणलीला' और 'अर्जुनचरित' आदि ग्रन्थों से दिये हैं, किन्तु अधिकांश उदाहरण अन्य प्रसिद्ध कवियों के ग्रन्थों से दिये हैं। प्राचीन सभी आचार्य कारिका भाग तथा वृत्तिभाग दोनों का निर्माता आनन्दवर्धनाचार्य को ही मानते हैं। किन्तु डॉ0 वुल्हर, प्रो0 जैकोबी, प्रो0 कीथ आदि आधुनिक विद्वानों ने इन दोनों भागों को भिन्न व्यक्तियों की रचना सिद्ध करने का यत्न किया है। इन भिन्नता वादियों के मत में कारिका भाग के निर्माता कोई

'सहृदय' नाम के व्यक्ति हैं और वृत्ति भाग के निर्माता आनन्दवर्धनाचार्य हैं। अपने मत के समर्थन के लिए वे 'ध्वन्यालोक' के प्रथम तथा अन्तिम श्लोक में 'सहृदय' पद के प्रयोग को प्रस्तुत करते हैं। प्रथम श्लोक जो ऊपर उद्धृत किया जा चुका है उसके अन्तिम चरण में 'तेन ब्रूमः सहृदयमनःप्रीतये तत्स्वरूपम्' में जो 'सहृदय' पद आया है इसे भेदवादी लोग कारिकाकार का नाम मानते हैं। इसी प्रकार 'ध्वन्यालोक' के अन्तिम

श्लोक -

'सत्काव्यतत्त्वनयवर्त्मचिरप्रसुप्तकल्पं मनस्सु परिपक्वधियां यदासीत्।

तद्व्याकरोत् सहृदयोदयलाभहेतोरानन्दवर्धन इति प्रथिताभिधानः।।'

इसमें जो 'सहृदयोदयलाभहेतोः' पद आया है यह भी इन भेदवादियों की दृष्टि में मूल कारिकाकार के नाम का ग्राहक है। किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। 'सहृदय' शब्द यहाँ किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं, अपितु 'सहृदय' व्यक्तियों का बोधक विशेषण पद है। 'ध्वन्यालोक' की टीका 'लोचन' में स्थान-स्थान पर 'वृत्तिकृत्' 'ग्रन्थकृत्' आदि शब्दों का जो प्रयोग आता है। वह व्याख्या के कारिका तथा वृत्ति भाग को सूचित करने की दृष्टि से ही आता है, किन्तु उसका यह अभिप्राय नहीं है कि वृत्तिकार और कारिकाकार दोनों अलग-अलक हैं। वक्रोक्तिजीवितकार कुन्तक, व्यक्तिविवेककार महिम भट्ट, 'औचित्यविचार चर्चा' के निर्माता क्षेमेन्द्र आदि उत्तरवर्ती सभी आचार्य आनन्दवर्धन को ही कारिका तथा वृत्ति भाग दोनों का निर्माता मानते हैं। स्वयं आनन्दवर्धनाचार्य ने भी कहा है -

'इति काव्यार्थविवेको योयं चेतश्चमत्कृतिविधायी।

सूरिभिरनुसृतसारैरस्मदुपज्ञो न विस्मार्यः।।'

ऐसा लिखकर ध्वनि तत्त्व को 'अस्मदुपज्ञ' कहा है। अर्थात् स्वयं अपने आपको ही ध्वनि सिद्धान्त का प्रतिष्ठापक बतलाया है। अतः कारिका भाग तथा वृत्ति भाग दोनों का निर्माता आनन्दवर्धनाचार्य को ही मानना उचित है।

आनन्दवर्धनाचार्य के 'ध्वन्यालोक' पर दो टीकाओं का पता चलता है। इनमें से एक अभिनव गुप्तपादाचार्य द्वारा विरचित 'लोचन' टीका उपलब्ध होती है। दूसरी टीका 'चन्द्रिका' नाम की थी। यह टीका 'लोचन' से पहले लिखी गयी थी और उसके निर्माता अभिनव गुप्त के पूर्व वंशज ही थी। अभिनव गुप्त ने 'लोचन' में जगह-जगह उसका खण्डन किया है। एक जगह खण्डन करते हुए लिखा है -

'चन्द्रिकाकारस्तु पठितमनुपठतीति न्यायेन गजनिमीलिकया व्याचचक्षे। .... इत्यलं पूर्ववंश्यैः सह विवादेन बहुना।' -- लोचन, पृ0 145

'चन्द्रिका' टीका के होने पर भी अभिनव गुप्त ने जो 'लोचन' टीका लिखी है इसका कारण दिखलाते हुए लपेचनकार ने लिखा है -

'किं लोचनं विनालोको भाति चन्द्रिकयापि हि।

अतोभिनवगुप्तोत्र लोचनोन्मीलनं व्यधात्।।'

इसमें प्रकारान्तर से ग्रन्थकार ने 'लोचन' की विशेषता सूचित की है।

अभ्यास प्रश्न -

1- प्रश्न - काव्यप्रकाश के लेखक कौन है ?

2- प्रश्न - मम्मट को विद्याध्ययन के लिए कश्मीर से 'शिवपुरी' कहा भेजा गया ?

3- प्रश्न - आनन्दवर्धनाचार्य साहित्य शास्त्र के प्रमुख किस सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक थे

4- प्रश्न - 'ध्वन्यालोक' में कितने भाग हैं।

5- प्रश्न - 'ध्आनन्दवर्धनाचार्य के 'ध्वन्यालोक' पर कितने टीकाओं का पता चलता है।

3.4 सारांश

इस इकाई में मम्मट, विश्वनाथ एवं आनन्दवर्धन जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व के विषय में अध्ययन किया गया है। भोजराज के बाद मम्मटाचार्य का काल आता है। अलङ्कार साहित्य के निर्माताओं की अब तक की धारा में दण्डी, राजशेखर और भोजराज के अतिरिक्त और सभी आचार्य कश्मीर निवासी थे। विश्वनाथ का सबसे मुख्य और प्रसिद्धतम ग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' है। 'काव्यप्रकाश' के समान इसमें भी दस परिच्छेद हैं और इन परिच्छेदों में प्रायः उसी क्रम से विषय का विवेचन किया गया है। किन्तु इसकी अपनी विशेषता यह है इसके छठे परिच्छेद में, जो इसका सबसे बड़ा परिच्छेद है, नाट्यशास्त्र -सम्बन्धी सम्पूर्ण विषय का समावेश कर दिया गया है, जिससे काव्य तथा नाट्य-सम्बन्धी सम्पूर्ण विषयों का ज्ञान एक ही ग्रन्थ द्वारा प्राप्त हो जाने से ग्रन्थ की उपयिोगिता बढ़ गयी है। आनन्दवर्धनाचार्य साहित्य शास्त्र के प्रमुख ध्वनि सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक होने के नाते साहित्य शास्त्र के अत्यन्त प्रसिद्ध एवं प्रमुखतम आचार्य हैं। पूर्ववर्ती अन्य आचार्यों के समान यह भी कश्मीर के निवासी हैं।'ध्वन्यालोक' में तीन भाग हैं। एक मूल कारिका - भाग, दूसरा उनकी वृत्ति और तीसरा भाग उदाहरण रूप है। कारिका और वृत्ति दोनों भागों के निर्माता स्वयं आनन्दवर्धनाचार्य ही हैं। उदाहरणों में कुछ उदाहरण उन्होंने स्वयं अपने बनाये 'विषमबाणलीला' और 'अर्जुनचरित' आदि ग्रन्थों से दिये हैं, किन्तु अधिकांश उदाहरण अन्य प्रसिद्ध कवियों के ग्रन्थों से दिये हैं। प्राचीन सभी आचार्य कारिका भाग तथा वृत्तिभाग दोनों का निर्माता आनन्दवर्धनाचार्य को ही मानते हैं। आनन्दवर्धनाचार्य के 'ध्वन्यालोक' पर दो टीकाओं का पता चलता है। इनमें से एक अभिनव गुप्तपादाचार्य द्वारा विरचित 'लोचन' टीका उपलब्ध होती है। दूसरी टीका 'चन्द्रिका' नाम की थी। अतः इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप मम्मट, विश्वनाथ एवं आनन्दवर्धन जैसे काव्यशास्त्रियों का परिचय देकर साहित्यशास्त्र में उनके योगदान को भी समझा सकेंगे।

3.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
काव्यस्यात्मा	काव्य की आत्मा
ध्वनिरिति	यह ध्वनि
बुधैर्यः	विद्वानों के द्वारा जो

तस्याभावं	उसका अभाव
केचिद्वाचां	कुछ वाणी
स्थितमविषय	स्थितविषय
तदीय	उसका यह
तेनब्रूम:	उसके द्वारा कहा गया
प्रीतये	प्रेम के लिये
तत्स्वरूपम्	उसका स्वरूप

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तर - काव्यप्रकाश के लेखक आचार्य मम्मट है?

2. उत्तर - मम्मट को विद्याध्ययन के लिए कश्मीर से 'शिवपुरी' वाराणसी भेजा गया।

3. उत्तर - आनन्दवर्धनाचार्य साहित्य शास्त्र के प्रमुख ध्वनि सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक थे

4. उत्तर - 'ध्वन्यालोक' में तीन भाग हैं।

5. उत्तर - आनन्दवर्धनाचार्य के 'ध्वन्यालोक' पर दो टीकाओं का पता चलता है।

3.7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1.संस्कृत शास्त्रों का इतिहास,बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक शारदा निकेतन वी, कस्तूरवानगर , वाराणसी

2-काव्यप्रकाश आचार्य मम्मट,विश्वेश्वर कृत हिन्दी व्याख्या सहित, चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आनन्दवर्धन के ग्रन्थ का परिचय दीजिए।

2. आचार्य मम्मट का योगदान लिखिए।

3.विश्वनाथ का परिचय दीजिए।

इकाई 4.अभिनवगुप्त, राजशेखर, धनंजय ,भोजराज का जीवन वृत्त,समय

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 अभिनवगुप्त, राजशेखर, धनंजय एवं भोजराज जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 उपयोगी पुस्तकें
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

काव्यशास्त्र से सम्बन्धित खण्ड चार की यह चौथी इकाई है। इस इाकई के अध्ययन से आप बता सकते है कि 'अभिनव गुप्त का पूरा नाम 'अभिनवगुप्तपाद' है। ''ध्वन्यालोक' की 'लोचन' टीका के निर्माता अभिनवगुप्त कश्मीर के एक प्रमुख विद्वान थे। वे स्वयं यद्यपि कश्मीरी ब्राह्मण थे, किन्तु उनके पूर्वज सदा कश्मीर के ही रहने वाले नहीं थे। अभिनव गुप्त के जन्म से लगभग 200 वर्ष पूर्व उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध नगर कन्नौज में रहते थे, जो उन दिनों एक बड़ा समृद्ध एवं शक्तिशाली साम्राज्य था।

दशम शताब्दी के आरम्भ में प्रसिद्ध नाटककार तथा काव्य शास्त्र के सूक्ष्म विवेचक राजशेखर का नाम उल्लेख योग्य है। अब तक हमने साहित्य शास्त्र के जिन आचार्यों का परिचय दिया है, उनमें एक दण्डी को छोड़कर शेष सभी आचार्य कश्मीरी थे। दण्डी के बाद यह दूसरे आचार्य हैं जो कश्मीर के बाहर के हैं। राजशेखर विदर्भवासी हैं। किन्तु इनका कार्यक्षेत्र विदर्भ में न होकर कन्नौज में रहा। कन्नौज के प्रतीहारवंशीय राजा महेन्द्र पाल और महिपाल इनके शिष्य थे। धनञ्जय भी दशम शताब्दी के एक महान् साहित्यिक हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध मुख्यतः अलङ्कार शास्त्र से न होकर नाट्यशास्त्र से है। इनका एकमात्र ग्रन्थ 'दशरूपक' है। भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' के बाद इस विषय पर यह सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।
अतः इस इकाई का अध्ययन के बाद आप अभिनवगुप्त, राजशेखर, धनंजय एवं भोजराज के विषय में विस्तार से बताते हुए साहित्यशास्त्र में उनके योगदान को बता सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

अभिनवगुप्त, राजशेखर, धनंजय एवं भोजराज जीवन के जीवनवृत्त, समय, व कृतित्त्व से सम्बद्ध इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- ❖ अभिनवगुप्त के व्यक्तित्व के विषय में बता सकेंगे।
- ❖ राजशेखर का समय व पाण्डित्य समझा सकेंगे।
- ❖ धनंजय के व्यक्तित्व और कृतित्व का वर्णन कर सकेंगे।
- ❖ भोजराज की रनचा के सम्बन्ध में बता सकेंगे।

4.3 अभिनवगुप्त, राजशेखर, धनंजय एवं भोजराज का जीवन वृत्त,समय, कृतित्त्व

अभिनवगुप्त—

'ध्वन्यालोक' की 'लोचन' टीका के निर्माता अभिनवगुप्त कश्मीर के एक प्रमुख विद्वान हैं। वे स्वयं यद्यपि कश्मीरी ब्राह्मण थे, किन्तु उनके पूर्वज सदा कश्मीर के ही रहने वाले नहीं थे। अभिनव गुप्त के जन्म से लगभग 200 वर्ष पूर्व उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध नगर कन्नौज में रहते थे, जो उन दिनों एक बड़ा समृद्ध एवं शक्तिशाली साम्राज्य था। उस समय कन्नौज साम्राज्य के अधिपति यशोवर्मा थे। यह आठवीं शताब्दी की बात है। कश्मीर में उस समय राजा ललितादित्य राज्य कर रहे थे। किसी कारणवश कश्मीर राज ने कन्नौज पर चढ़ाई कर दी और उस युद्ध में

यशोवर्मा पराजित हो गये। उस समय यशोवर्मा के यहाँ अत्रिगुप्त नाम के एक बहुत बड़े विद्वान थे। कश्मीर के राजा तो सदा से ही बड़े-बड़े विद्वानों का आदर एवं संग्रह करने वाले रहे हैं। इसलिए राजा ललितादित्य अत्रिगुप्त को बड़े आदर पूर्वक अपने यहाँ ले गये। उनके लिए मकान बनवा तथा एक बड़ी जागीर प्रदान कर अपने यहाँ रखा। इन्हीं अत्रिगुप्त के वंश में लगभग 200 वर्ष बाद अभिनवगुप्त उत्पन्न हुए। अभिनवगुप्त ने इस घटना का वर्णन अपने ग्रन्थ 'तन्त्रालोक' में निम्नलिखित प्रकार किया है -

'नि:शेषशास्त्रसदनं किल मध्यदेश-
स्तस्मिन्नजायत गुणाभ्यधिको द्विजन्मा।
कोप्यत्रिगुप्त इति नाम निरुक्तगोत्रः
शास्त्राब्धिचर्वणकलोद्यदगस्त्यगोत्रः।।
तमथ ललितादित्यो राजा निजं पुरमानयत्।
प्रणयरभसात् कश्मीराख्यं हिमालयमूर्धगम्।।
तस्मिन् कुबेरपुरचारिसितांशुमौलि-
साम्मुख्यदर्शनविरूढ़पवित्रभावे।
वैतस्तरोधसि निवासममुष्य चक्रे
राजा द्विजस्य परिकल्पितभूरिसम्पत्।।'

इस प्रकार मध्य देश या अन्तर्वेदी गङ्गा-यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश कन्नौज से अत्रिगुप्त को लाकर ललितादित्य ने कश्मीर में वितस्ता नदी के किनारे, जो कैलास (अलका) चारी भगवान् शिवजी के अति सम्मुख दर्शन से पवित्र है, पर मकान बनवाकर तथा 'परिकल्पितभूरिसम्पत्' जागीर आदि प्रचुर सम्पत्ति प्रदान कर आदरपूर्वक रखा। इस बात का वर्णन करने के बाद अभिनव गुप्त ने 'तन्त्रालोक' में ही फिर इसी वंश में अपने बाबा 'वराहगुप्त', अपने पिता 'चुलुखक' तथा अपनी उत्पत्ति का वर्णन निम्नलिखित प्रकार किया है -

'तस्यान्वये महति कोपि वराहगुप्तनामा बभूव भगवान् स्वयमन्तकाले।
गीर्वाणसिन्धुलहरीकलिताग्रमूर्धा यस्याकरोत् परमनुग्रहमाग्रहेण।।
तस्यात्मजः चुलुखकेति जने प्रसिद्धश्चन्द्रावदातधिषणो नरसिंहगुप्तः।
यं सर्वशास्त्ररसमज्जनशुभ्रचित्तं माहेश्वरी परमलङ्कुरुते स्म भक्तिः।।'

इन दो श्लोकों में अभिनव गुप्त ने अपने बाबा वराहगुप्त तथा अपने पिता नरसिंहगुप्त, जिनकी लोक में 'चुलुखक' नाम से प्रसिद्धि थी, की उत्पत्ति का वर्णन किया है। इन्हीं नरसिंह गुप्त के पुत्र अभिनव गुप्त थे। अभिनव गुप्त ने अपने 1. 'विवृतिविमर्शिनी', 2. 'क्रमस्तोत्र' तथा 3. 'भैरवस्तोत्र' इन तीन ग्रन्थों का रचनाकाल कश्मीर के प्रसिद्ध सप्तर्विसंवत्सर और उसके साथ कलिसंवत्सर का सम्बन्ध दिखलाते हुए दिया है। उसके अनुसार 'क्रमस्तोत्र' की रचना 990 ई0 में, 'भैरवस्तोत्र' की रचना 962 ई0 में और 'विवृतिविमर्शिनी' की रचना 1014 ई0 में की गयी है। 'विवृतिविमर्शिनी' में उसके रचनाकाल निर्देश अभिनवगुप्त ने इस प्रकार किया है -

'इति नवतिमिस्मिन् वत्सरान्त्ये युगांशे
तिथिशशिजलधिस्थे मार्गशीर्षावसाने।
जगति विहितबोधामीश्वरप्रत्यभिज्ञां
व्यवृणुत परिपूर्णां प्रेरितः शम्भुपादैः।।'

'अन्त्ये युगांशे' अर्थात् कलियुग के तिथि अर्थात् 14 'शशि' अर्थात् 1 और 'जलधि' अर्थात् 4, 'अङ्कानां वामतो गतिः' इस सिद्धान्त के अनुसार 4114 कलि-संवत्सर में जब कि कश्मीर का प्रसिद्ध 'सप्तर्षिसंवत्सर' का 'नवतितमेस्मिन्; 90 संवत् अर्थात् 4090 'सप्तर्षिसंवत्' में मार्गशीर्षक के अन्त में इस ग्रन्थ की रचना हुई। इस कलिसंवत्सर और सप्तर्षि संवत्सर को जब हम ईसवी सन में लाते हैं तब यह मालूल होता है कि 1014 ईसवीं सन् में 'विवृतिविमर्शिनी' की रचना हुई। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अभिनवगुप्त का काल दशम शताब्दी के अन्तिम भाग तथा ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में था।

अभिनव गुप्त का पूरा नाम 'अभिनव गुप्तपाद' है। 'काव्यप्रकाश' के टीकाकार वामन का कहना है कि यह नाम बाद को उनके गुरुओं ने उनकी अपने सहाध्यायी बालकों को सताने और डराने की प्रवृत्ति के कारण दिया था। 'गुप्तपाद' का अर्थ है 'सर्प'। यह अपने साथियों के लिए सर्प के समान त्रासदायक थे इसलिए गुरुओं ने इनका 'अभिनव-गुप्तपाद' नाम रख दिया। इसके बाद इन्होंने अपने लिए गुरुप्रदत्त इसी नाम का व्यवहार आरम्भ कर दिया। इन्होंने 'तन्त्रालोक' (1-50) में स्वयं भी लिखा है-

'अभिनवगुप्तस्य कृतिः सेयं यस्योदिता गुरुभिराख्या।'

अभिनवगुप्त को विद्याध्ययन का बड़ा व्यसन था। इनके समय में कश्मीर में और कश्मीर के आस-पास जितने प्रसिद्ध विद्वान् थे उन सबके पास जाकर इन्होंने विद्या का अध्ययन किया था। जिस शास्त्र के विशेषज्ञ के रूप में जिस विद्वान् को उस समय प्रसिद्धि थी उस शास्त्र का अध्ययन इन्होंने उसी विशिष्ट विद्वान् के पास जाकर किया था। इसलिए इनके भिन्न-भिन्न शास्त्रों के भिन्न-भिन्न गुरु थे, जिनकी सूची निम्नलिखित है -

1.	नरसिंह गुप्त (अभिन्व गुप्त के पिता)	व्याकरण शास्त्र के गुरु
2.	वामनाथ द्वैताद्वैत	तन्त्र के गुरु
3.	भूतिराजतनय	द्वैतवादी शैव सम्प्रदाय के गुरु
4.	लक्ष्मण गुप्त	प्रत्यभिज्ञा, क्रम तथा त्रिक दर्शन के गुरु
5.	भट्ट इन्दुराज	ध्वनि सिद्धान्त के गुरु
6.	भूतिराज	ब्रह्म विद्या के गुरु
7.	भट्ट तोत	नाट्य शास्त्र के गुरु

इन सात गुरुओं का तो अभिनव गुप्त ने शास्त्र के सहित उल्लेख किया है। इनके अअतिरिक्त अपने 13 गुरुओं का उल्लेख भी एक श्लोक में इस प्रकार किया है -

'श्रीचन्द्रशर्मभवभक्तिविलासयोगान्दाभिनन्दशिवशक्तिविचित्रनाथाः।

अन्येपि धर्मशिववामनकोद्भटश्रीभूतेशभास्करमुखप्रमुखा महान्तः॥'

अभिनवगुप्त की रचनाएं—

अभिनवगुप्त के गुरुओं के समान उनके ग्रन्थों की भी एक बड़ी लम्बी सूची है। उनमें 'तन्त्रालोक' जैसे विशालकाय ग्रन्थ भी है और 'क्रमस्तोत्र', 'भैरवस्तोत्र' जैसे 10-12 श्लोकों की कृतियाँ भी। इन सबको मिलाकर उनकी रचनाओं की संख्या 41 तक पहुँच जाती है। रचनाकाल के क्रमानुसार उनके नाम निम्नलिखित प्रकार हैं -

1. बोधपश्चदशिका, 2. परात्रिंशिकाविवृतिः, 3. मालिनीविजयवार्तिक,4. तन्त्रालोक, 5. तन्त्रसार, 6. तन्त्रवटधानिका, 7. ध्वन्यालोक-लोचन, 8. अभिनवभारती, 9. भगवद्गीतार्थ संग्रह, 10. परमार्थसार, 11. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, 12. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी (बृहती), 13. क्रमस्तोत्र, 14. देहस्थदेवताचक्रस्तोत्र, 15. भैरवस्तोत्र, 16. परमार्थद्वादशिका, 17.अनुभवनिवेदन,18.परमार्थचर्चा,19.महोपदेकशविंशतिका, 20.अनुक्रारशतिका, 21.न्त्रोच्चय, 22.घटकर्परकुलकविवृति,23.क्रमकेलि, 24.शिवदृष्ट्यालोचन, 25.पूर्वपश्चिका, 26.पदार्थप्रवेशनिर्णयटीका,27.प्रकीर्णकविवरण, 28.प्रकरणविवरण, 29.काव्यकौतुकविवरण,30. कथामुखटीका, 31. लध्वी प्रक्रिया, 32. भेदवादविदारण, 33. देवीस्तोत्रविवरण,34. तत्त्वार्थप्रकाशिका, 35. शिशक्त्यविनाभावस्तोत्र, 36. बिम्बप्रतिबिम्बवाद, 37.परमार्थसंग्रह, 38.अनुत्तरशतक,39.प्रकरणस्तोत्र, 40.नाट्यलोचन, 41. अनुत्तरतत्त्वविमर्शिनी।

अन्तिम 6 कृतियाँ ऐसी हैं जिनके केवल नामों का उल्लेख सूची पत्रों में मिलता है। ग्रन्थ नहीं मिलते हैं। इसी प्रकार ऊपर दिये 35 ग्रन्थों में से कुछ ऐसे हैं जिनका उल्लेख अभिनव गुप्त ने स्वयं अपने उपलब्ध ग्रन्थों में किया है, किन्तु वे प्राप्त नहीं हैं।

इन 41 कृतियों में से साहित्य शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले केवल तीन ग्रन्थ हैं। एक 'ध्वन्यालोकलोचन' जो 'ध्वन्यालोक' की टीका के रूप में लिखा गया है, दूसरा 'अभिनव भारती' जो भरत-नाट्य शास्त्र की टीका के रूप में लिखा गया है और तीसरा 'घटकर्पर-विवरण' जो 'मेघदूत' के सदृश एक दूतकाव्य पर टीका रूपमें लिखा गया है। शेष सब ग्रन्थ शैवदर्शन आदि से सम्बन्ध रखने वाले हैं।

राजशेखर—

दशवीं शताब्दी के आरम्भ में प्रसिद्ध नाटककार तथा काव्य शास्त्र के सूक्ष्म विवेचक राजशेखर का नाम आता है। अब तक हमने साहित्य शास्त्र के जिन आचार्यों का परिचय दिया है, उनमें एक दण्डी को छोड़कर शेष सभी आचार्य कश्मीरी थे। दण्डी के बाद यह दूसरे आचार्य हैं जो कश्मीर के बाहर के हैं। राजशेखर विदर्भवासी हैं। किन्तु इनका कार्यक्षेत्र विदर्भ में न होकर कन्नौज में रहा। कन्नौज के प्रतीहारवंशीय राजा महेन्द्र पाल और महिपाल इनके शिष्य थे। 'बालरामायण' नाटक में अपने इन शिष्यों की प्रशंसा करते हुए राजशेखर ने लिखा है -

'आपन्नार्तिहरः पराक्रमधनः सौजन्यवारन्निधिः

त्यागी सत्यसुधाप्रवाहशशभृत् कान्तः कवीनां गुरुः।

वर्ण्यं वा गुणरत्नरोहणगिरेः किं तस्य साक्षादसौ
देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः।।'- बा0रा0 1-18

राजशेखर अपने को 'यायावरीयः' लिखते हैं। इसका अर्थ यह है कि वे 'यायावर' वंश में उत्पन्न हुए थे। वे महाराष्ट्र के प्रसिद्ध कवि 'अकालजलद' के पौत्र थे। उनके पिता का नाम 'दुर्दुक' और माता का नाम 'शीलवती' था। 'यायावर' वंश में इनके पितामह अकालजलद और उनके अतिरिक्त सुरानन्द, तरल आदि अनेक कविराज हो चुके हैं। इसलिए इनमें कवित्व तथा शास्त्रीय प्रतिभा वंश परम्परागत थी। सौभाग्य से पत्नी भी इनको बड़ी विदुषी और कवित्वप्रतिभाशालिनी प्राप्त हुई थी। उसका नाम 'अवन्तिसुन्दरी' था। राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में कई स्थानों पर 'इति अवन्तिसुन्दरी' लिखकर उसके साहित्य विषयक मतों का उल्लेख किया है। इससे उसके पाण्डित्य का परिचय मिलता है। यह अवन्तिसुन्दरी चौहान वंश में उत्पन्न हुई थी। अपने 'कर्पूरमञ्जरी सट्टक' में राजशेखर ने अपनी पत्नी का परिचय निम्नलिखित प्रकार दिया है -

'चाहुमानकुलमौलिमालिका राजशेखरकवीन्द्रगेहिनी।
भर्तुः कृतिमवन्तिसुन्दरी या प्रयोक्तुमेवमिच्छति।।'-कर्पूरमञ्जरी (संस्कृत) 1-11

राजशेखर की रचनाएं—

राजशेखर मुख्य रूप से कवि और नाटककार हैं। उन्होंने चार नाटकों की रचना की है - 1. 'बालरामायण', 2. 'बालभारत', 3. 'विद्धशालभञ्जिका' और 4. 'कर्पूरमञ्जरी'। 'कर्पूरमञ्जरी' संस्कृत भाषा में न लिखकर प्राकृत भाषा में लिखा गया 'सट्टक' है। इनका पाँचवाँ ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' है। यह ग्रन्थ साहित्य समीक्षा से सम्बन्ध रखता है। इसी ग्रन्थ के कारण अलङ्कार शास्त्र के इतिहास में उनको गौरवमय स्थान प्राप्त हुआ है। अब तक हम साहित्य शास्त्र के ग्रन्थों की जो रूप-रेखा देखते आये हैं, राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' की रूपरेखा उस सबसे एकदम विलक्षण है। इसमें अठारह अध्याय हैं। प्रथम अध्याय का नाम 'शास्त्र संग्रह' है। इसमें बतलाया गया है कि 'काव्यमीमांसा' की शिक्षा शिव ने ब्रह्मा आदि को किस प्रकार प्रदान की और फिर ब्रह्मा से शिष्य परम्परा द्वारा इसके 18 विषयों को 18 लेखकों ने 18 ग्रन्थों में अलग-अलग लिखाऔर उन सबको यायावर वंशोत्प" राजशेखर ने एक ही ग्रन्थ में 18 अध्यायों में किस प्रकार संक्षेप में दे दिया है। इसलिए इस अध्याय का नाम 'शास्त्र-संग्रह' अध्याय रखा है। दूसरे अध्याय का नाम 'शास्त्रनिर्देश' है। इसमें वाङ्मय को दो भागों में विभक्त किया है - एक 'शास्त्र' और दूसरा 'काव्य'। 'शास्त्र' को फिर पौरुषेय तथा अपौरुषेय रूप से दो भागों में विभक्त किया है। 4 वेद, 4 उपवेद और 6 वेदाङ्ग ये अपौरुषेय शास्त्र के वर्ग में आते हैं। राजशेखर ने अपना मत दिया है कि 6 वेदाङ्गों के साथ अलङ्कारों को भी सातवाँ वेदाङ्ग मानना चाहिये। पौरुषेय शास्त्र में पुराण, आन्वीक्षिकी, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, 18 स्मृति, 14 या 18 प्रकार की जो विद्याएँ मानी जाती हैं उन सबका समावेश होता है। तीसरे अध्याय का नाम 'काव्यपुरुषोत्पत्ति' है। इसमें सरस्वती से 'काव्यपुरुष' की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। उस काव्यपुरुष के स्वरूप का वर्णन करते हुए लिखा है - 'शब्दार्थौ ते शरीरम्, संस्कृतं मुखम्, प्राकृतं बाहुः, जघनमपभ्रंशः, पैशाचं

पादौ, उरो मिश्रम् समःप्रसन्नो मधुर उदार ओजस्वी चासि। उक्तिलक्षणं च ते वचो, रस आत्मा, रोमाणि छन्दांसि प्रश्नोत्तरप्रवह्लिकादिकं च वाक्केलिः, अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलअंकुर्वन्ति। साहित्य विद्या वधू के साथ 'वत्सगुल्म' नगर में इस काव्य पुरुष के विवाह का वर्णन भी किया है।

चतुर्थ अध्याय का नाम 'पदवाक्यविवेक' है। इसमें कवि बनने के लिए किन-किन बातों की आवश्यकता है इस बात का वर्णन विशेष रूप से किया गया है। इसमें राजशेखर ने कहा है कि 'यायावरीय' के मत में केवल एक शक्ति ही काव्य का हेतु है। उसी से प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति आती है। अन्यों के मत में समाधि तथा अभ्यास की भी आवश्यकता होती है।

इसी प्रकार आगे अध्यायों के नाम तथा विषय हैं - 1. काव्यपादकल्प, 6. पदवाक्यविवेक, 7. पाठप्रतिष्ठा, 8. काव्यार्थयोनि, 9. अर्थव्याप्ति, 10. कविचर्या तथा राजचर्या। इसके बाद 11-13 अध्यायों में यह दिखलाया है कि कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों के अभिप्राय को कैसे और कहाँ तक समझ सकता है। 14-16 अध्यायों में देश, काल, प्रकृति आदि के वर्णन में प्रसिद्ध कवि समय का वर्णन किया गया है। 17वें
अध्याय में देश विभाग तथा 18वें अध्याय में काल विभाग का वर्णन है।

इस विषय सूची के देखने से विदित होता है कि 'काव्यमीमांसा' अपने पूर्ववर्ती अलङ्कार ग्रन्थों से एकदम विलक्षण ग्रन्थ है। वह कवि के लिए उपयोगी जानकारी देने वाला एक विश्वकोश सा प्रतीत होता है। इसलिए राजशेखर एक स्वतन्त्र 'कविशिक्षा सम्प्रदाय' के प्रवर्तक माने जा सकते हैं। राजशेखर के बाद क्षेमेन्द्र, अरिसिंह, अमर चन्द्र तथा देवेश्वर आदि ने भी इसी प्रकार 'कविशिक्षा' के विषय में ग्रन्थों की रचना की है। इसलिए साहित्यशास्त्र, रससम्प्रदाय, ध्वनिसम्प्रदाय, अलङ्कारसम्प्रदाय आदि प्रसिद्ध सम्प्रदायों से भिन्न यह 'कविशिक्षा सम्प्रदाय' अलग ही माना जाना चाहिये।

धनञ्जय—

धनञ्जय दशवीं शताब्दी के ही एक महान् साहित्यिक हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध मुख्यतः अलङ्कार शास्त्र से न होकर नाट्यशास्त्र से है। इनका एकमात्र ग्रन्थ 'दशरूपक' है। भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' के बाद इस विषय पर यह सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। भरत का 'नाट्यशास्त्र' एक विश्व कोश है। उसमें जितना वर्णन नाट्य के मुख्य विषयों का है उससे कहीं अधिक विस्तृत वर्णन उउसे सम्बद्ध अन्य विषयों का है। नाट्य के पारिभाषिक शब्दों और विशेष विषयों का यदि कोई मूल 'नाट्यशास्त्र' से अध्ययन करना चाहे तो उसे बड़ कठिनाई होगी। इसलिए धनञ्जय ने 'नाट्ययशास्त्र' के आधार पर नाटक के भेदोपभेद सहित इस प्रकार के रूपकों से सम्बन्ध रखने वाली सारी बातों का संग्रह करके इस सरल ग्रन्थ का निर्माण कर दिया है। इससे नाटक सम्बन्धी सारी बातें बड़ी सरलता से समझ में आ जाती हैं। इसीलिए इस ग्रन्थ का द्विानों में बड़ा आदर हुआ और पठन-पाठन में सर्वत्र प्रचार होने से इसकी बड़ी ख्याति हुई।

'दशरूपक' ग्रन्थ कारिका रूप में लिखा गया है। इसमें लगभग 300 कारिकाएँ हैं। ग्रन्थ चार प्रकाशों में विभक्त है। प्रथम प्रकाश में ग्रन्थ के प्रयोजन आदि को दिखलाते हुए ग्रन्थकार ने

नाट्यानां किन्तु 'किञ्चित् प्रगुणरचनया लक्षणं संक्षिपामि', नाटकों के लक्षण आदि को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना इस ग्रन्थ का प्रयोजन बतलाया है। उसके बाद नाटकों की पञ्चसन्धियों, अर्थोपक्षेपकों आदि के लक्षण और आख्यान वस्तु के भेद आदि का वर्णन किया गया है। द्वितीय प्रकाश में नायक - नायिका भेद तथा कैशिकी आदि वृत्तियों के भेदों का वर्णन किया गया है। तृतीय प्रकाश में नाटक के लक्षण, प्रस्तावना, अङ्कमंविधान, कथाभाग के औचित्यानुसार परिवर्तन, नाटक के प्रधान रस, पात्रों की संख्या, प्रवेश और निर्गम के नियम आदि का वर्णन किया गया है। चतुर्थ प्रकाश मुख्यतः रसों से सम्बन्ध रखता है। रस के स्थायिभाव, व्यभिचारि भाव आदि सामग्री का विवेचन, रसनिष्पत्ति सामाजिक में होती है, रसास्वादन के प्रकार, नाट्य में शान्त रस की अनुपयोगिता, अन्य रसों की स्थिति आदि रस सम्बन्धी समस्त विषयों का विवेचन किया गया है।

ग्रन्थ के अन्त में अपना परिचय देते हुए धनञ्जय ने लिखा है -

'विष्णोः सुतेनापि धनञ्जयेन विद्वन्मनोरागनिबन्धहेतुः।
आविष्कृतं मुञ्जमहीशगोष्ठीवैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत्।।'

इससे प्रतीत होता है कि धनञ्जय के पिता का नाम 'विष्णु' था। इन्होंने मालवा के परमार वंश के राजा 'मुञ्ज, जिनको 'वाक्पतिराज द्वितीय' भी कहा जाता है, की राजसभा में रहने का सौभाग्य प्राप्त किया था और वहीं रहकर इस ग्रन्थ की रचना की थी। मुञ्ज का राज्यकाल 974-994 ई0 तक माना जाता है। अतः यही धनञ्जय का काल है। रसनिष्पत्ति के विषय में धनञ्जय व्यञ्जनावादी नहीं हैं। चतुर्थ प्रकाश में उन्होंने इसका खण्डन किया है। धनञ्जय के 'दशरूपक' पर उनके छोटे भाई धनिक ने 'अवलोक' नाम की टीका लिखी है। यह टीका बड़ी विद्वत्तापूर्ण है। धनिक के अतिरिक्त नृसिंह भट्ट, देवपाणि, कुरविराम और बहुरूप मिश्र ने भी दशरूपक के ऊपर टीकाएँ लिखी हैं। इनमें से बहुरूप मिश्र की टीका विशेष महत्त्वपूर्ण है। ये चारों टीकाएँ हस्त लिखित रूप में उपलब्ध हैं। अभी प्रकाशित नहीं हुई हैं।

भोजराज—

भोजराज भारतीय इतिहास में विद्वानों के आश्रयदाता एवं उदार दानशील राजा के रूप में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनका शासनकाल ग्यारहवीं शताब्दी में माना जाता है। इनकी विद्वत्सेवा एवं दानशीलता की सारे देश में ख्याति थी। यहाँ तक कि कश्मीर राज्य के इतिहास 'राजतरङ्गिणी' में भी इनके इन गुणों की प्रशंसा की गयी है। कश्मीर के राजा अनन्तराज की चर्चा हम अभी कर चुके हैं, भोजराज उन्हीं अनन्तराज के समकालीन हैं। 'राजतरङ्गिणी' की सप्तम तरङ्ग में कश्मीर नरेश अनन्तराज तथा मालवाधीश भोजराज दोनों की समान रूप से विद्वत्प्रियता का उल्लेख ग्रन्थकार ने निम्नलिखित प्रकार से किया है -

'स च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ।
सूरी तस्मिन् क्षणे तुल्यं द्वावास्तां कविबान्धवौ।।'' 7-259

इसमें 'स च' इस सर्वनाम 'स' पद से प्रकृत वर्ण्यमान कश्मीराधिपति अनन्तराज का ग्रहण होता है। अनन्तराज का समय ग्यारहवीं शताब्दी में था, इसी प्रकार भोजराज का समय भी ग्यारहवीं शताब्दी में निश्चित माना जाता है। भोजराज के समय के निर्णय के लिए इस प्रमाण के अतिरिक्त उनका स्वयं एक शिला-दानपत्र संवत्, 1078 सन् 1021 का पाया जाता है। इसमें भोजराज ने गोविन्द भट्ट के पुत्र धनपतिभट्ट नामक किसी ब्राह्मण को ग्रामदान करने का उल्लेख किया है। उसके अन्त में उस दान पत्र की तिथि आदि इस प्रकार दी है -'इति। संवत् 1078 चैत्र सुदी 14 स्वयमाज्ञा मंगलं महाश्रीः। स्वहस्तोयं भुजदेवस्य।'इस दानपत्र में अपने उत्तराधिकारी अन्य सब लोगों से प्रार्थना की है कि जो दान दे दिया गया है उसको कोई वापस लेने का यत्न न करे। उनमें से दो श्लोक निम्नलिखित प्रकार हैं -

'सर्वानेतान् भाविनः पार्थिवेन्द्रान् भूयो भूयो याचते रामभद्रः।
सामान्योयं धर्मसेतुर्नराणाँ काले काले पालनीयो भवद्भिः।।
इति कमलदलाम्बुबिन्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्यजीवितं च।
सकलमिदमुदाहतं च बुद्ध्वा हि पुरुषैः परकीर्तयो विलोपनीयाः।।

राजा भोज केवल विद्वानों का आदर करने वाले ही नहीं थे अपितु स्वयं भी एक महान्
विद्वान् और अच्छे साहित्यिक थे। अलङ्कार शास्त्र के विषय में उनके लिखे हुए दो ग्रन्थ मिलते हैं - 1. 'सरस्वतीकण्ठाभरण' और 2. 'शृङ्गारप्रकाश'। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' पाँच परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में दोष और गुण का विवेचन है। इसमें इन्होंने पद, वाक्य तथा वाक्यार्थ तीनों के 16-16 दोष माने हैं और शब्द तथा अर्थ दोनों के 24-24 गुण माने हैं। द्वितीय परिच्छेद में 24 शब्दालङ्कारों तथा चतुर्थ परिच्छेद में 24 उभयालङ्कारों का वर्णन किया है। प´्चम परिच्छेद में रस, भाव, प´चसन्धि तथा चारों वृत्तियों का वर्णन किया है। इसके ऊपर 14वीं शताब्दी में तिरहुत के राजा रामसिंह देव के आग्रह से महामहोपाध्याय रत्नेश्वर ने 'रत्नदर्पण' नामक टीका लिखी थी। इस टीका के सहित यह ग्रन्थ काव्यमाला सीरीज में निर्णय सागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित हो चुका है।

भोज राज का दूसरा ग्रन्थ 'शृङ्गारप्रकाश' है। यह बड़ा विशालकाय ग्रन्थ है। इसमें 36 'प्रकाश' हैं। ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में पूरा उपलब्ध है। परन्तु अभी पूरा प्रकाशित नहीं हुआ है। इस ग्रन्थ पर प्रथम आठ प्रकाशों में शब्द तथा अर्थ विषयक अनेक वैयाकरणों के मत दिये गये हैं। नवम-दशम प्रकाशों में गुण तथा दोषों का विवेचन है। ग्यारहवें-बारहवें प्रकाश में महाकाव्य तथा नाटक का वर्णन है। शेष 24 प्रकाशों में उदाहरण सहित रसों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसमें, जैसा कि ग्रन्थ नाम से ही प्रतीत होता है, शृङ्गार रस को ही प्रधान रस अथवा एकमात्र रस माना है -

'शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतरौद्रहास्य-
वीभत्सवत्सलभयानकशान्तनाम्नः।
आम्नासिषुर्दशरसान् सुधियो वयं तु

शृङ्गारमेव रसनाद् रसमामनामः।।'

किन्तु भोजराज का यह शृङ्गार सामान्य शृङ्गार नहीं है, उसमें धर्म, अर्थ, काम औरमोक्ष चारों पुरुषार्थों का समावेश हो जाता है। 'मन्दारमरन्दचम्पू' (बिन्दु 7, पृ0 107) मेंलिखा है ''अथ भोजनृपादीनां मतमत्र प्रकाश्यते। 'रसो वैसः' इति श्रुत्वा रस एकः प्रकीर्त्तितः। अतो रसः स्याच्छृङ्गार एक एवेतरे तु न। धर्मार्थकाममोक्षाख्यभेदेन स चतुर्विधः।'' 'शृङ्गारप्रकाश' अलङ्कारशास्त्र के ग्रन्थों में कदाचित् सबसे अधिक विशालकाय ग्रन्थ है। भोजराज की इस उत्तम रचना ने साहित्यिक जगत् में उनका नाम चिरकाल के लिए अमर कर दिया है।

अभ्यास प्रश्न -

1-प्रश्न -'ध्वन्यालोक' की किस टीका के निर्माता अभिनवगुप्त कश्मीर के एक प्रमुख विद्वान हैं ?

2-प्रश्न - अभिनवगुप्त यद्यपि कहा के ब्राह्मण थे ?

3-प्रश्न - धनञ्जय किस शताब्दी के एक महान् साहित्यिक हैं

4-प्रश्न - धनञ्जय का सम्बन्ध मुख्यतः अलङ्कार शास्त्र से न होकर किस शास्त्र से है।

5-प्रश्न-धनञ्जय का एक मात्र ग्रन्थ क्या है ?

4.4 सारांश

इस इकाई में अभिनवगुप्त, राजशेखर, धनंजय एवं भोजराज जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व के विषय में अध्ययन किया गया है। 'ध्वन्यालोक' 'लोचन' टीका के निर्माता अभिनवगुप्त कश्मीर के एक प्रमुख विद्वान हैं। 'ध्वन्यालोकलोचन' जो 'ध्वन्यालोक' की टीका के रूप में लिखा गया है, दूसरा 'अभिनव भारती' जो भरत-नाट्य शास्त्र की टीका के रूप में लिखा गया है और तीसरा 'घटकर्पर-विवरण' जो 'मेघदूत' के सदृश एक दूतकाव्य पर टीका रूप में लिखा गया है। शेष सब ग्रन्थ शैवदर्शन आदि से सम्बन्ध रखने वाले हैं। राजशेखर ने चार नाटकों की रचना की है - 1. 'बालरामायण', 2. 'बालभारत', 3. 'विद्धशालभञ्जिका' और 4. 'कर्पूरमञ्जरी'। 'कर्पूरमञ्जरी' संस्कृत भाषा में न लिखकर प्राकृत भाषा में लिखा गया 'सट्टक' है। इनका पाँचवाँ ग्रन्थ 'काव्यमीमांसा' है।धनञ्जय दशवीं शताब्दी के ही एक महान् साहित्यिक हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध मुख्यतः अलङ्कार शास्त्र से न होकर नाट्यशास्त्र से है। इनका एकमात्र ग्रन्थ 'दशरूपक' है। भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' के बाद इस विषय पर यह सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। भरत का 'नाट्यशास्त्र' एक विश्व कोश है। उसमें जितना वर्णन नाट्य के मुख्य विषयों का है उससे कहीं अधिक विस्तृत वर्णन उउसे सम्बद्ध अन्य विषयों का है। नाट्य के पारिभाषिक शब्दों और विशेष विषयों का यदि कोई मूल 'नाट्यशास्त्र' से अध्ययन करना चाहे तो उसे बड़ कठिनाई होगी। इसलिए धनञ्जय ने 'नाट्ययशास्त्र' के आधार पर नाटक के भेदोपभेद सहित इस प्रकार के रूपकों से सम्बन्ध रखने वाली सारी बातों का संग्रह करके इस सरल ग्रन्थ का निर्माण कर दिया है। अलङ्कार शास्त्र के विषय में उनके लिखे हुए दो ग्रन्थ मिलते हैं - 1. 'सरस्वतीकण्ठाभरण' और 2. 'शृङ्गारप्रकाश'। भोजराज का 'सरस्वतीकण्ठाभरण' पाँच परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में दोष और गुण का विवेचन है। इसमें इन्होंने पद, वाक्य तथा वाक्यार्थ तीनों के 16-16

दोष माने हैं और शब्द तथा अर्थ दोनों के 24-24 गुण माने हैं। द्वितीय परिच्छेद में 24 शब्दालङ्कारों तथा चतुर्थ परिच्छेद में 24 उभयालङ्कारों का वर्णन किया है। पञ्चम परिच्छेद में रस, भाव, प´चसन्धि तथा चारों वृत्तियों का वर्णन किया है। इसके ऊपर 14 वीं शताब्दी में तिरहुत के राजा रामसिंह देव के आग्रह से महामहोपाध्याय रत्नेश्वर ने 'रत्नदर्पण' नामक टीका लिखी थी। अतः इस इकाई के अध्ययन के बाद आप अभिनवगुप्त, राजशेखर, धनंजय एवं भोजराज जीवन वृत्त, समय, व कृतित्त्व से परिचित होकर साहित्यशास्त्र में उनका स्थान व महत्व निर्धारित कर सकेंगे।

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
'सर्वानेतान्	इन सभी को
भाविनः	होने वाले
पार्थिवेन्द्रान्	पार्थिव इन्द्र को
भूयो भूयो	बार बार
याचते	मांगते है
रामभद्रः	रामभद्र
सामान्योयं	यह सामान्य
काले काले	काला काला
पालनीयो	पालन करने योग्य
भवद्धिः	आप लोगों के द्वारा

4. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.उत्तर-'ध्वन्यालोक' की 'लोचन' टीका के निर्माता अभिनवगुप्त कश्मीर के एक प्रमुख विद्वान हैं।

2.उत्तर - अभिनवगुप्त यद्यपि कश्मीरी ब्राह्मण हैं,

3.उत्तर - धनञ्जय दशम शताब्दी के एक महान् साहित्यिक हैं

4.उत्तर - धनञ्जय सम्बन्ध मुख्यतः अलङ्कार शास्त्र से न होकर नाट्यशास्त्र से है।

5.उत्तर - धनञ्जय एकमात्र ग्रन्थ 'दशरूपक' है।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.-संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक, शारदा निकेतन कस्तूरवानगर वाराणसी।

3-काव्यप्रकाश आचार्य मम्मट विश्वेश्वर कृत हिन्दी व्याख्या सहित चौखम्भा

4. 8 उपयोगी पुस्तकें

1.-काव्यशास्त्र का इतिहास पी0वी0 काणे - काव्यमाला सिरीज

4. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.धनञ्जय के विषय में विस्तार से परिचय दीजिये।

2.भोजराज के मत का उल्लेख कर उनकी रचना पर प्रकाश डालिए।

3.अभिनव गुप्त का विस्तार से परिचय दीजिए।

इकाई 5.रामचन्द्र, गुणचन्द्र, शारदातनय, रूपगोस्वामी पंडितराज जगन्नाथ का जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 रामचन्द्र, गुणचन्द्र, शारदातनय, रूपगोस्वामी पंडितराज जगन्नाथ जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व

5.4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.8 उपयोगी पुस्तके

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

काव्यशास्त्र से सम्बन्धित खण्ड चार की यह पॉचवी इकाई है। इस इाकई के अध्ययन से आप बता सकते है कि आचार्य हेमचन्द्र के बाद उनके प्रमुख शिष्य रामचन्द्र और गुणचन्द्र का स्थान आता है। आचार्य हेमचन्द्र के समान ये दोनों भी जैन धर्म के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान हैं। वैसे रामचन्द्र गुणचन्द्र एक नहीं, दो अलग-अलग व्यक्ति हैं, किन्तु दोनों हेमचन्द्राचार्य के शिष्य हैं।दोनों ने मिलकर 'नाट्यदर्पण' नामक एक नाट्यविषयक ग्रन्थ की रचना की है इसलिए इन दोनों के नाम का उल्लेख प्रायः साथ-साथ ही किया जाता है। गुणचन्द्र का अपना अलग से कोई और ग्रन्थ नहीं पाया जाता है, किन्तु रामचन्द्र के अलग भी बहुत-से ग्रन्थ पाये जाते हैं जो प्रायः नाटक हैं।'शारदातनय, अलङ्कार शास्त्र के साथ नाट्यशास्त्र के आचार्य हैं। इनके ग्रन्थ का नाम 'भावप्रकाशन' है। रूपगोस्वामी के साहित्य शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले तीन ग्रन्थों में से 'भक्तिरसामृतसिन्धु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' ये दोनों ग्रन्थ रस विषय पर हैं। 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण विभाग नाम से चार 'विभाग' हैं।पण्डितराज जगन्नाथ ने बहुत से ग्रन्थों की रचना की, जिनमें 1. 'भामिनीविलास', 2. 'गङ्गालहरी', 3. 'करुणालहरी', 4. 'अमृतलहरी', 5. 'लक्ष्मीलहरी', 6. 'आसफविलास', 7. 'जगदाभरण', 8. 'प्राणाभरण', 9. 'सुधाहलहरी', 10. 'यमुनावर्णनचम्पू' ये सब काव्यग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

अतः इस इकाई के अध्ययन के बाद आप रामचन्द्र, गुणचन्द्र, शारदातनय, रूपगोस्वामी पंडितराज जगन्नाथ के जीवन वृत्त, समय,व कृतित्त्व को जानकर इनके विविध पक्षों पर विस्तार से बता सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

रामचन्द्र, गुणचन्द्र, शारदातनय, रूपगोस्वामी पंडितराज जगन्नाथ जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व से सम्बद्ध इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- रामचन्द्र के व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में बता सकेंगे।
- शारदातनय की कृतियों के विषय में बता सकेंगे।
- रूपगोस्वामी के व्यक्तित्व के विषय में समझा सकेंगे।
- पंडितराज जगन्नाथ के विषय में बता सकेंगे।

5.3 रामचन्द्र, गुणचन्द्र, शारदातनय, रूपगोस्वामी पंडितराज जगन्नाथ का जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व

रामचन्द्र-गुणचन्द्र—

आचार्य हेमचन्द्र के बाद उनके प्रमुख शिष्य रामचन्द्र और गुणचन्द्र का स्थान आता है। आचार्य हेमचन्द्र के समान ये दोनों भी जैन धर्म के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान हैं। वैसे रामचन्द्र गुणचन्द्र एक नहीं, दो अलग-अलग व्यक्ति हैं, किन्तु दोनों हेमचन्द्राचार्य के शिष्य हैं। इन दोनों ने मिलकर

'नाट्यदर्पण' नामक एक नाट्यविषयक ग्रन्थ की रचना की है इसलिए इन दोनों के नाम का उल्लेख प्रायः साथ-साथ ही किया जाता है। गुणचन्द्र का अपना अलग से कोई और ग्रन्थ नहीं पाया जाता है, किन्तु रामचन्द्र के अलग भी बहुत-से ग्रन्थ पाये जाते हैं जो प्रायः नाटक हैं। उन्हें 'प्रबन्धकर्ता' कहा जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि उन्होंने लगभी 190 ग्रन्थों की रचना की थी। उनके 11 नाटकों के उद्धरण 'नाट्यदर्पण' ग्रन्थ में पाये जाते हैं। अनेक दुर्लभ नाटकों के उद्धरण भी इसमें दिये गये हैं, जिनमें विशाखदत्तविरचित 'देवीचन्द्रगुप्त' नाटक भी है। अन्य साहित्य ग्रन्थों के समान 'नाट्यदर्पण' की रचना भी कारिका शैली में हुई है। उस पर वृत्ति भी ग्रन्थकारों ने स्वयं ही लिखी है। ग्रन्थ में चार 'विवेक' हैं, जिनमें क्रमशः नाटक, प्रकरणादि रूपक, रस, भावाभिनय तथा रूपक सम्बन्धी अन्य बातों का विवेचन किया गया है। इन्होंने रस को केवल सुखात्क न मानकर दुःखात्मक भी माना है। आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य होने के नाते ये गुजरात के सिद्धराज (1093-1143), कुमारपाल (1143-1172) तथा अजयपाल (1172-1174) तीन राजाओं के समय में विद्यमान थे। कहते हैं कि अन्तिम राजा अजयपाल ने किसी कारणवश क्रुद्ध होकर इन्हें प्राणदण्ड दिलवा दिया था। इनका समय 12वीं शताब्दी में निश्चित होता है।शारदातनय का परिचय (13वीं शताब्दी)

शारदातनय अलङ्कार शास्त्र के नहीं, अपितु नाट्यशास्त्र के आचार्य हैं। इनके ग्रन्थ का नाम 'भावप्रकाशन' है। ग्रन्थ में दस 'अधिकार' अथवा अध्याय हैं। इनमें क्रमशः 1. भाव, 2. रसस्वरूप, 3. रसभेद, 4. नायक-नायिका, 5. नायिकाभेद, 6. शब्दार्थसम्बन्ध, 7. नाट्येतिहास, 8. दशरूपक, 9. नृत्यभेद तथा 10. नाट्य-प्रयोग का वर्णन किया गया है।

शारदातनय का नाम उनका राशिनाम नहीं है अपितु वे अपने को शारदा देवी का पुत्र मानकर अपने को 'शारदातनय' कहने-लिखने लगे, इसलिए उनको यही नाम प्रसिद्ध हो गया। उन्होंने अपने 'भावप्रकाशन' ग्रन्थ में भोज के 'शृङ्गारप्रकाश' तथा मम्मट के 'काव्यप्रकाश' से अनेक श्लोकों को उद्धृत किया है। आगे 1320 ई0 के लगभग होने वाले शिङ्गभूपाल ने अपने 'रसार्णवसुधाकर' ग्रन्थ में इन शारदातनय के मत का उल्लेख किया है, इसलिए शारदातनय का समय उनसे पूर्व अर्थात् तेरहवीं शताब्दी माना जा सकता है।

रूपगोस्वामी का परिचय (15-16वीं शताब्दी)—

रूपगोस्वामी चैतन्य महाप्रभु के शिष्य प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य हैं। इन्होंने वैष्णव दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं विशाल साहित्य की रचना की है। रूपगोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी ये दो भाई थे। दोनों चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे और उन्हीं की प्रेरणा से अपनी जन्मभूमि बंगाल को छोड़कर वृन्दावन में जाकर बसे थे। इनके साथ इनके एक भतीजे जीवगोस्वामी भी हैं। ये तीनों ही वैष्णव धर्म के प्रसिद्ध आचार्य हैं। इनके कारण वृन्दावन को साहित्यिक क्षेत्र में अपूर्व गौरव प्राप्त हुआ है। जीवगोस्वामी ने सनातन गोस्वामी की भागवत-टीका का संक्षिप्त रूप 'लघुतोषिणी' के नाम से प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में उन्होंने सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी के सभी ग्रन्थों की सूची दी है। इस सूची के अनुसार रूप गोस्वामी के 17 ग्रन्थ हैं। इनमे 1. 'हंसदूत' काव्य, 2.

'उद्धवसन्देश' काव्य, 3. 'विदग्धमाधव' नाटक, 4. 'ललितमाधव' नाटक, 5. 'दानकेलिकौमुदी' भाणिका, 6. 'भक्तिरसामृतसिन्धु', 7. 'उज्ज्वलनीलमणि' (रसशास्त्र) तथा 8. 'नाटकचन्द्रिका' ये आठ ग्रन्थ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से भी अन्तिम तीन ग्रन्थ अलङ्कारशास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले हैं। इन्हीं ग्रन्थों के कारण अलङ्कारशास्त्र के इतिहास में इनको महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। इनमें से 'विदग्धमाधव' का रचनाकाल 1533 ई0 तथा 'उत्कलिकावल्लरी' (जिसका उल्लेख ऊपर नहीं आया) का रचनाकाल 1550 ई0 दिया गया है। इससे इनके कालनिर्धारण में सहायता मिलती है। चैतन्य महाप्रभु का समय 15वीं शताब्दी का अन्तिम भाग है। रूपगोस्वामी उनके शिष्य हैं और 1550 में उन्होंने 'उत्कलिकावल्लरी' की रचना की है, इसलिए उनका समय हमने 15-16वीं शताब्दी रखा है।

रूपगोस्वामी के साहित्य शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले तीन ग्रन्थों में से 'भक्तिरसामृतसिन्धु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' ये दोनों ग्रन्थ रस विषय पर हैं। 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण विभाग नाम से चार 'विभाग' हैं। प्रत्येक विभाग अनेक लहरियों में विभक्त हैं। इसमें भक्तिरस को सर्वोत्तम रस सिद्ध करने का यत्न किया गया है। पूर्व विभाग में भक्ति का सामान्य स्वरूप, लक्षणादि दिये हैं। दक्षिण विभाग में उसके विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, व्यभिचारि भाव तथा स्थायि भावों का वार्णन किया गया है। पश्चिम विभाग में शान्त भक्तिरस, प्रीत भक्ति रस, प्रेयो भक्ति रस, वत्सल भक्ति रस तथा मधुर भक्ति रस आदि भक्ति रस के विशेष भेदों का निरूपण किया है। उत्तर विभाग में हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, वीभत्स और भयानक रसों का वर्णन और रसों के विरोधाविरोध आदि का दिग्दर्शन कराया गया है। इस ग्रन्थ की रचना 1541 ई0 (1433 शाके) में हुई थी। 'उज्ज्वलनीलमणि' इसका पूरक ग्रन्थ है। उसमें मधुर शृङ्गार का विवेचन है।

रूपगोस्वामी का साहित्य शास्त्र विषय तीसरा ग्रन्थ 'नाटकचन्द्रिका' है। इसकी रचना उन्होंने भरत-नाट्यशास्त्र तथा शिङ्गभूपाल के 'रसार्णवसुधाकर' के आधार पर की है। इसमें विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' में किये हुए नाट्यनिरूपण को भरतमुनि के विपरीत बतलाया गया है।

रूपगोस्वामी के भतीजे जीवगोस्वामी ने उनके 'भक्तिरसामृतसिन्धु' पर 'दुर्गमसङ्गमिनी' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' पर 'लोचनरोचनी' टीकायें लिखी हैं। रूपगोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी के समान जीवगोस्वामी भी बड़े उच्च कोटि के विद्वान् थे। ये तीनों आचार्य वृन्दावन के गौरवभूत हैं।

पण्डितराज जगन्नाथ—

अप्पय्यदीक्षित के बाद पण्डितराज जगन्नाथ का नाम आता है। वैसे ये दोनों समकालीन और दक्षिण भारत के परस्पर प्रतिद्वन्द्वी विद्वान् हैं: पण्डितराज जगन्नाथ के पिता का नाम पेरुभट्ट तथा माता का नाम लक्ष्म देवी था। ये तैलङ्ग ब्राह्मण थे। यों इनका जन्म दक्षिण भारत में हुआ था किन्तु इनका यौवन दिल्ली के शाहजहाँ बादशाह के यहाँ बीता था ('दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः')।

'दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वामनोरथान् पूरयितुं समर्थः।

अन्येन केनापि नृपेण दत्तंशाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यत्।।'

शाहजहाँ के यहाँ रहकर ये दाराशिकोह को संस्कृत पढ़ाते थे। उसके संस्कृत और भारतीय अध्यात्म विद्या के प्रति अनुपम अनुरागादि गुणों को देखकर पण्डितराज ने द्वाराकशिकोह के ऊपर 'जगदाभरण' नाम का एक पूरा काव्य ही बना डाला था। शाही दरबार के सरदार आसफअली इनके मित्र थे। 1641 ई0 में उनकी मृत्यु हो जाने पर उनकी स्मृति में इन्होंने 'आसफविलास' नामक काव्य की रचना की थी।

पण्डितराज कवि होने के नाते बड़े रसिक थे। दिल्ली में आकर वे लवङ्की नामकी यवन कन्या के चक्कर में फँस गये थे। यह यवन कन्या बहुत सामान्य परिवार की थी। सिर पर पानी का घड़ा लेकर जाती हुई उस नवयुवती को देखकर मुग्ध हो गये और बादशाह से प्रार्थना की कि -

'न याचे गजालिं न वा वाजिराजि
न वित्तेषु चित्तं मदीयं कदाचित्।
इयं सुस्तनी मस्तकन्यस्तकुम्भा
लवङ्गी कुरङ्गीदृगङ्गीकरोतु।।'

लवङ्गी के ऊपर यह इतने आसक्त थे कि उसके बिना इन्हें तनिक भी चैन नहीं था और स्वर्ग का सुख भी तुच्छ प्रतीत होता था -

'यवनी नवनीतकोमलाङ्गी शयनीये यदि नीयते कदाचित्।
अवनीतलमेव साधु मन्ये न वनी माधवनी विनोदहेतुः।।
यवनी रमणी विपदः शमनी कमनीयतया नवनीतसमा।
उहि-ऊहि वचोमृतपूर्णमुखी स सुखी जगतीह यदङ्कगता।।'

इत्यादि अनेक श्लोक पण्डितराज ने इस यवन कन्या के विषय में की है। अपना यौवनकाल इन्होंने इस यवन कन्या के साथ दिल्ली में बिताया। ढलती उमर में यौवन का नशा उतरने पर इस पाप का प्रायश्चित करने के लिए 'मधुपुरीमध्ये हरिः सेव्यते', मथुरा आकर कृष्ण की आराधना में लग गये और अन्म समय में काशी में पश्चगङ्गा घाट पर बैठकर गङ्गा की स्तुति में 'गङ्गालहरी' की रचना की। कहते हैं कि गङ्गालहरी का एक एक श्लोक भक्ति भाव से गाते जाते थे और गङ्गा की धारा इनके पास बढ़ती आती थी (अथवा ये स्वयं गङ्गा की धारा की ओर बढ़ते जाते थे)। 'गङ्गालहरी' के अन्तिम श्लोक के पाठ के साथ गङ्गा ने इनको अपनी गोद में ले लिया और इनकी जीवन लीला समाप्त हो गयी। यह इनके यवनीप्रणय का अन्तिम प्रायश्चित था।

यवनी प्रणय की घटना को लेकर इनके प्रतिद्वन्द्वी अप्पय्यदीक्षित ने इनको जाति बहिष्कृत करा दिया था। इसलिए ये अप्पय्यदीक्षित से और भी अधिक नाराज हो गये थे और अप्पय्यदीक्षित की 'चित्रमीमांसा' के खण्डन में 'चित्रमीमांसाखण्डन' ग्रन्थ लिखा, जिसमें अप्पय्यदीक्षित के लिए अनेक दुर्वाक्यों का प्रयोग किया है।

पण्डितराज जगन्नाथ ने बहुत से ग्रन्थों की रचना की, जिनमें 1. 'भामिनीविलास', 2. 'गङ्गालहरी', 3. 'करुणालहरी', 4. 'अमृतलहरी', 5. 'लक्ष्मीलहरी', 6. 'आसफविलास', 7.

'जगदाभरण', 8. 'प्राणाभरण', 9. 'सुधाहलहरी', 10. 'यमुनावर्णनचम्पू' ये सब काव्यग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। भट्टोजिदीक्षित की 'मनोरमा' के खण्डन में 'मनोरमाकुचमर्दन' नामक व्याकरण ग्रन्थ की भी रचना की थी।

अलङ्कारशास्त्र के सम्बन्ध में इन्होंने जो ग्रन्थ लिखा, उसका नाम 'रसागङ्गाधर' है। यह बड़ा प्रौढ़ और विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ है। इसमें सारे उदाहरण इन्होंने स्वयं अपने बनाकर दिये हैं। इस बात का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है -

'निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं
काव्यं मयात्र निहितं न परस्य किञ्चित्।
किं सेव्यते सुमनसां मनसापि गन्धः
कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण।।'

किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि पण्डितराज का यह ग्रन्थ अधूरा है। इसमें केवल दो 'आनन' हैं। प्रथम आनन में अन्य सब काव्य लक्षणों का खण्डन करके 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' को काव्य का लक्षण स्थापित किया है। काव्य के हेतुओं में 'प्रतिभा' को ही मुख्य हेतु ठहराया गया है और 1. उत्तमोत्तम, 2. उत्तम, 3. मध्यम तथा 4. अधम, ये चार काव्य के भेद बतलाये हैं। द्वितीय आनन में ध्वनि के भेदों को दिखलाकर अभिधा तथा लक्षणा का विवेचन किया है। उसके बाद 70 अलङ्कारों का वर्णन किया है। उत्तरालङ्कार के विवेचन के बाद यह ग्रन्थ बीच में ही समाप्त हो गया है।

'रसगङ्गाधर' पर नागेशभट्ट कृत 'गुरुमर्मप्रकाशिका' टीका प्रकाशित हो चुकी है। नागेशभट्ट ने गोविन्द ठक्कुर की 'काव्यप्रकाश' पर लिखी 'काव्यप्रदीप' टीका पर वृहत् तथा लघु दो 'उद्योत' भी लिखे हैं। 'उदाहरणदीपिका' मम्मट के ग्रन्थ का विवरण है। उन्होंने अप्पय्यदीक्षित के 'कुवलयानन्द' पर भी 'अलङ्कारसुधा' तथा 'विषमपदव्याख्यानषटपदानन्द' टीका लिखी है। भानुदत्त की 'रसमञ्जरी' की 'प्रकाश' टीका तथा 'रसतरङ्गिणी' व्याख्या भी नागेश भट्ट ने लिखी है।

अभ्यास प्रश्न -

1- प्रश्न -'आचार्य हेमचन्द्र के बाद उनके प्रमुख शिष्य किस-किस का स्थान आता है।

2- प्रश्न -'आचार्य हेमचन्द्र के समान ये दोनों भी किस धर्म के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान हैं।

3- प्रश्न -'रामचन्द्र और गुणचन्द्र इन दोनों ने मिलकर किस नामक एक नाट्यविषयक ग्रन्थ की रचना की है

4- प्रश्न -'शारदातनय किस शास्त्र के आचार्य हैं

5- प्रश्न -'शारदातनय ग्रन्थ का नाम क्या है।

5.4 सारांश

इस इकाई में रामचन्द्र, गुणचन्द्र, शारदातनय, रूपगोस्वामी, पंडितराज जगन्नाथ का जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व के विषय में अध्ययन किया गया है। अप्पय्यदीक्षित के बाद पण्डितराज जगन्नाथ

का नाम आता है। वैसे ये दोनों समकालीन और दक्षिण भारत के परस्पर प्रतिद्वन्द्वी विद्वान् हैं: पण्डितराज जगन्नाथ के पिता का नाम पेरुभट्ट तथा माता का नाम लक्ष्म देवी था। ये तैलङ्ग ब्राह्मण थे। यों इनका जन्म दक्षिण भारत में हुआ था किन्तु इनका यौवन दिल्ली के शाहजहाँ बादशाह के यहाँ बीता था।रामचन्द्र गुणचन्द्र एक नहीं, दो अलग-अलग व्यक्ति हैं, किन्तु दोनों हेमचन्द्राचार्य के शिष्य हैं। इन दोनों ने मिलकर 'नाट्यदर्पण' नामक एक नाट्यविषयक ग्रन्थ की रचना की है इसलिए इन दोनों के नाम का उल्लेख प्रायः साथ-साथ ही किया जाता है। गुणचन्द्र का अपना अलग से कोई और ग्रन्थ नहीं पाया जाता है, किन्तु रामचन्द्र के अलग भी बहुत-से ग्रन्थ पाये जाते हैं जो प्रायः नाटक हैं।शारदातनय अलङ्कार शास्त्र के नहीं, अपितु नाट्यशास्त्र के आचार्य हैं। इनके ग्रन्थ का नाम 'भावप्रकाशन' है। ग्रन्थ में दस 'अधिकार' अथवा अध्याय हैं। इनमें क्रमशः 1. भाव, 2. रसस्वरूप, 3. रसभेद, 4. नायक-नायिका, 5. नायिकाभेद, 6. शब्दार्थसम्बन्ध, 7. नाट्यतिहास, 8. दशरूपक, 9. नृत्यभेद तथा 10. नाट्य-प्रयोग का वर्णन किया गया है।रूपगोस्वामी के साहित्य शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले तीन ग्रन्थों में से 'भक्तिरसामृतसिन्धु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' ये दोनों ग्रन्थ रस विषय पर हैं। 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण विभाग नाम से चार 'विभाग' हैं। प्रत्येक विभाग अनेक लहरियों में विभक्त हैं। पण्डितराज जगन्नाथ ने अलङ्कारशास्त्र के सम्बन्ध में इन्होंने जो ग्रन्थ लिखा, उसका नाम 'रसागङ्गाधर' है। यह बड़ा प्रौढ़ और विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ है।अतः इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप रामचन्द्र, गुणचन्द्र, शारदातनय, रूपगोस्वामी पंडितराज जगन्नाथ जीवन वृत्त, समय, कृतित्त्व की जानकारी प्रप्त कर साहित्यशास्त्र के इतिहास में उनके स्थान को समझा सकेंगे।

5.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
'दिल्लीश्वरः	दिल्ली का राजा
जगदीश्वरः	संसार का ईश्वर
मनोरथान्	मनोरथों को
पूरयितुम्	पूर्ण करने में
समर्थः	समर्थ है
अन्येन	दूसरे के द्वारा
केनापि	किसी से भी
नृपेण दत्तम्	राजा के द्वारा दिया गया

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.उत्तर - आचार्य हेमचन्द्र के बाद उनके प्रमुख शिष्य रामचन्द्र और गुणचन्द्र का स्थान आता है।

2.उत्तर - आचार्य हेमचन्द्र के समान ये दोनों भी जैन धर्म के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान हैं।

3.उत्तर - रामचन्द्र और गुणचन्द्र इन दोनों ने मिलकर 'नाट्यदर्पण' नामक एकनाट्यविषयक ग्रन्थ की रचना की है

4.उत्तर - शारदातनय नाट्यशास्त्र के आचार्य हैं

5.उत्तर - शारदातनय के ग्रन्थ का नाम 'भावप्रकाशन' है।

5. 7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक,शारदा निकेतन, कस्तूरवानगर वाराणसी।

2. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, विश्वेश्वर कृत हिन्दी व्याख्या सहित, चौखम्भा

4. 8 उपयोगी पुस्तकें

1. काव्यशास्त्र का इतिहास पी0वी0 काणे - काव्यमाला सिरीज

5. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शारदातनय का विस्तार से परिचय दीजिये।

2. रूपगोस्वामी के मत का उल्लेख कीजिए।

3.पण्डितराज जगन्नाथ का विस्तार से परिचय दीजिए।